॥ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

श्री श्री भागवत-पत्रिका

वर्ष—२० राष्ट्रभाषा हिन्दीमें श्रीश्रीरूप-रघुनाथकी वाणीकी एकमात्र वाहिका संख्या—५-१२

मथुरामें विराजमान भगवान् श्रीकेशवदेवजी

- स्तवमाला
- गुरुवर्गका वाणी-वैभव
- श्रील गुरुदेवके वचनामृत

संस्थापक एवं नियामक

नित्यलीलाप्रविष्ट परमहंस ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके

अनुगृहीत

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

प्रेरणा-स्रोत
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज
श्रीमाधवप्रिय दास ब्रह्मचारी, श्रीअमलकृष्ण दास ब्रह्मचारी

प्रचार सम्पादक संघ—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त जनार्दन महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारसिंह महाराज
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त भारती महाराज
श्रीयुक्ता सुचित्रा दासी, श्रीमती वृन्दा(वन्दना) दासी

सहकारी सम्पादक संघ—डॉ. श्रीअच्युतलाल भट्ट, एम. ए., पी-एच. डी.
डॉ. (श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन'

कार्याध्यक्ष—श्रीमद् प्रेमानन्द दास ब्रह्मचारी 'सेवारत्न'

कार्यकारी मण्डल— श्रीगोकुलचन्द्र दास, श्रीसुबलसखा दास, श्रीप्रेमदास

ले-आउट, फोटो एवं डिजाइन—श्रीभक्तबान्धव कृष्णकारुण्य महाराज

कार्यकारी सहायक—पूजा दासी, गौरराज दास, सुशीलकृष्ण दास,
शचीनन्दन दास, गौरप्रिया दासी, प्रिया दासी

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१(उ. प्र.)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्टकी ओरसे
त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज द्वारा
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरासे प्रकाशित।

www.purebhakti.com www.harikatha.com
bhagavata.patrika@gmail.com

वर्ष ❀ २०

श्रीगौराब्द - ५३८
वि. सं. - २०८१; श्रीधर-गोविन्द मास ; सन् - २०२४-२५ (२२ जुलाई- १४ मार्च)

संख्या ❀ ५-१२

विषय-सूची

'स्तव-वैभव'

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत................................ २
—श्रील रूप गोस्वामी

गुरुवर्गका वाणी-वैभव

मानदत्व ४

ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति ५
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप ७
—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद'

चातुर्मास्य व्रत तथा रथयात्रानुष्ठान प्रसङ्ग............ ११
—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका तीसवाँ वर्ष..................... १३
—श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज

श्रील गुरुदेवके वचनामृत

गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ गुह्य विचार एवं आत्माका नित्य धर्म.................................. १५
—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज

धारावाहिक

श्रीगौराङ्ग-सुधा... २७

प्रचार-प्रसङ्ग

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका नव-निर्माण, उसकी ऐतिहासिक महिमा एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा वहाँ रहकर सम्पादित गुरु-गौराङ्ग एवं गौड़ीय-सम्प्रदायकी सेवा................. ३०

विरह-सम्वाद

श्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर गोस्वामी महाराज........... ५८

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट-संस्थापक
श्रीश्रील रूप गोस्वामी प्रभुके द्वारा प्रणीत

श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत

(वर्ष-२०, संख्या १-४ से आगे)

श्रीगोवर्धनोद्धराय नमः।

इति स्फारतारे क्षणैर्मुक्तभोगैर्व्रजेन्द्रेण सार्धं धृतप्रीतियोगैः।
मुहुर्बल्लवैर्वीक्ष्यमाणास्यचन्द्रं पुरः सप्तरात्रान्तरत्यक्त तन्द्रम्॥२२॥

हे गोविन्द! गोपोंने श्रीव्रजराजके साथ इस प्रकार (पूर्वोक्त दो श्लोकोंमें वर्णित) कथोपकथन करते हुए समस्त सुखोंको त्यागकर विस्मयसे विस्फारित नेत्रोंके द्वारा प्रसन्न मनसे एक सप्ताहकाल तक निद्रारहित रहकर आपके मुखचन्द्रका पुनः पुनः दर्शन किया॥२२॥

तड़िद्दामकीर्णान् समीरैरुदीर्णान् विसृष्टाम्बुधारान् धनुर्यष्टिहारान्।
तृणीकृत्य घोरान् सहस्रांशुचोरान् दुरन्तोरु शब्दान् धृतावज्ञमब्दान्॥२३॥
अहङ्कार पङ्कावली लुप्तदृष्टेर्व्रजे यावदिष्टं प्रणीतोरुवृष्टेः।
बलारेश्च दुर्मानितां विस्फुरन्तं निराकृत्य दुष्टालि दण्डे दुरन्तम्॥२४॥

[हे कृष्ण!] विद्युतमालासे व्याप्त, वायु द्वारा चालित, जलधाराका वर्षण करनेवाले, इन्द्रधनुषरूपी हारसे युक्त, सूर्यमण्डलके आच्छादनकारी और असहनीय गर्जनकारी भयङ्कर मेघसमूहको आपने तृणकी भाँति तुच्छ समझा तथा अहङ्काररूपी पङ्क (दलदल) के द्वारा विलुप्त-दृष्टि और भीषण वर्षाके द्वारा व्रजका प्रचुर अनिष्ट करनेवाले इन्द्रका अभिमान चूर्णकर आपने दुष्टोंके लिए शिक्षा प्रदान की॥२३-२४॥

विसृष्टोरुनीराः सझञ्झा समीरास्तड़िद्भिः कराला ययुर्मेघमालाः।
रविश्चाम्बरान्तर्विभात्येष शान्तः कृतानन्दपूरा बहिर्यातशूराः॥२५॥

[तब श्रीकृष्णने व्रजवासियोंको सम्बोधित करते हुए कहा—] प्रबल जल-वर्षणकारी भयङ्कर मेघ-समूह अब निवृत्त हो चुके हैं, प्रबल-वायुका वेग भी शान्त हो चुका है और सूर्यदेव भी गगन-मण्डलमें बाधारहित होकर प्रकाशित हो रहे हैं। अतएव, हे गोपगण! आप निर्भय तथा स्वच्छन्द चित्तसे गिरि-कन्दरासे बाहर आ जायें॥२५॥

इति प्रोच्य निःसारितज्ञातिवारं यथापूर्व विन्यस्तशैलेन्द्रभारम्।
दधिक्षीरलाजाङ्कुरैर्भाविनीभिर्मुदाकीर्यमाणं यशस्ताविनीभिः॥२६॥

[हे मुकुन्द!] आपने इस प्रकार कहकर गोपोंको गिरि-कन्दरासे बाहर कराया और तत्पश्चात् गिरिराज गोवर्धनको यथास्थान पूर्ववत् स्थापित किया। तब आनन्दित हृदयसे व्रजाङ्गनाएँ प्रीतिपूर्वक दधि, दूध, खील और दुर्वाङ्कुरादि माङ्गल्य द्रव्य चारों ओर परिवर्षण करते हुए आपका यश गाने लगीं॥२६॥

वयं हन्त गोविन्द सौन्दर्यवन्तं नमस्कुर्महे शर्महेतोर्भवन्तम्।
त्वयि स्पष्टनिष्ठ्यूतभूयश्चिदिन्दुं मुदा नः प्रसादीकुरुप्रेमबिन्दुम्॥२७॥

[इस प्रकार लीलाका वर्णन करके ग्रन्थकार प्रार्थना कर रहे हैं—] हे गोविन्द! हम परम-मङ्गल स्वरूप आपको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे परमसुन्दर आपको पुनः पुनः प्रणाम कर रहे हैं। अतएव, आप अनुग्रहपूर्वक ज्ञानरूपी चन्द्रमाको सम्पूर्णतः आच्छादित करनेवाले अपने विशुद्ध प्रेमकी एक बून्द हमें प्रदान करें॥२७॥

क्षुभ्यद्दम्भोलि जृम्भोत्तरल घनघटारम्भ गम्भीरकर्मा
निस्तम्भोजम्भवैरी गिरिधृति चटुलाद्विक्रमाद्येन चक्रे।
तन्वा निन्दन्तमिन्दीवरदलवलभीनन्ददिन्दिन्दिराभां
तं गोविन्दाद्य नन्दालय शशिवदनानन्द वन्देमहि त्वाम्॥२८॥

हे गोविन्द! आपने गिरिवर गोवर्धन धारणकर वायु, विद्युत एवं भयङ्कर वृष्टिपातके द्वारा व्रजका अनिष्ट करनेवाले जम्भवैरी इन्द्रके प्रबल अहङ्कारको दूर किया है। आपने नीलकमलपर विचरणशील भ्रमरोंकी कान्तिको अपनी श्यामल अङ्गकान्ति द्वारा पराजित कर दिया है। आप श्रीनन्दके गृहमें विराजमान यशोदा, रोहिणी आदि माताओंको महा-आनन्द प्रदान करनेवाले हैं। आज हम ऐसे आपको काय-मन-वाक्यके द्वारा प्रणाम करते हैं॥२८॥

क्रमशः

[**शुद्धि-सूचना**—श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके पिछले अङ्क अर्थात् वर्ष-२०, संख्या १-४ में श्रीस्तवमालाके अन्तर्गत पृष्ठ-२ पर श्लोक संख्या-१४ के अनुवादकी प्रथम पंक्तिमें भूलवशतः 'हे परमपिता गिरिराज गोवर्धन' लिखा गया है, इसका शुद्ध पाठ होगा—'हे पालनकारी गिरिराज गोवर्धन']

मानदत्व

दूसरोंको मान देनेका गुण

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका वाणी-वैभव

प्रश्न १—'मानद' शब्दका क्या अर्थ है?

उत्तर—'मानद'-शब्देन यथायोग्यं सर्वेषां मानदत्वं तस्य चतुर्थ लक्षणम्। सर्वान् जीवान् कृष्णदासान् ज्ञात्वा कमपि न द्विषति प्रतिद्विषति वा; मधुरवाक्येन जगन्मङ्गलकार्येण च तान् सर्वान् तोषयति।

(श्रीशिक्षाष्टक, सन्मोदन भाष्य, ३)

[(सङ्कीर्तनकारी भक्तिसाधकोंके चार लक्षण कहे गये हैं—तृणसे भी अधिक सुनीचता, वृक्षसे भी अधिक सहिष्णुता, अन्योंसे सम्मानकी कामना नहीं करना एवं अन्योंको सम्मान प्रदान करना।) अर्थात् 'मानद' शब्द 'सबको यथायोग्य मान देना'—सङ्कीर्तनकारी भक्तिसाधकोंके चौथे लक्षणको सूचित करता है। ऐसे लक्षणसे युक्त साधक, जीवमात्रको कृष्णदास समझकर, किसीके प्रति भी द्वेष या प्रतिहिंसाकी भावना नहीं रखते। वे अपने मधुर वचनों और जगत्मङ्गलकारी कार्योंसे सबको सन्तुष्ट करते हैं।]

प्रश्न २—यथायोग्य सम्मान दानसे क्या समझा जाता है?

उत्तर—"वैष्णवमात्रका ही सम्मान करना चाहिए। यदि वैष्णव-सन्तान शुद्ध-वैष्णव हों तो उनकी भक्तिके तारतम्यके अनुसार ही उनका सम्मान करना चाहिए; और यदि वैष्णव-सन्तान केवल व्यवहारिक मनुष्य हों, तब उनके प्रति साधारण मनुष्योचित व्यवहार ही उचित है, उनकी वैष्णवोंमें गणना अथवा उन्हें वैष्णवोचित सम्मान प्रदान नहीं करना चाहिए। जो वैष्णव हैं, उन्हें वैष्णवोचित सम्मान देना चाहिए, जो वैष्णव नहीं हैं, उन्हें मानवोचित सम्मान देना ही उचित है। दूसरोंके प्रति मानद (सम्मान देनेवाला) नहीं होनेसे हरिनाममें अधिकार उत्पन्न नहीं होता।"

(जैवधर्म, अध्याय ८)

प्रश्न ३—अपनेको 'गुरु' मानना क्या मानद-धर्मके विरुद्ध नहीं है?

उत्तर— "निजे श्रेष्ठ जानि' उच्छिष्टादि दाने,
हबे अभिमान-भार।
ताइ शिष्य तव थाकिया सर्वदा
ना लइब पूजा का'र॥"

(प्रार्थना, लालसामयी ८, कल्याण कल्पतरु)

[अर्थात् यदि मैं स्वयंको श्रेष्ठ (गुरु) मानकर अन्योंको अपना उच्छिष्ट प्रदान करूँगा तो अभिमान आकर मेरा सर्वनाश कर देगा। अतएव, हे वैष्णव ठाकुर! आप ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सदैव आपका शिष्य बनकर रहूँ तथा किसीसे भी पूजा-प्रतिष्ठा ग्रहण न करूँ।]

ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति

प्रश्न १—ऐकान्तिक-भक्तका विश्वास कैसा होता है?

उत्तर—"कृष्ण ही एकमात्र रक्षाकर्ता हैं, [उनकी शरणागति स्वीकार करनेके अतिरिक्त] किसी भी अन्य कार्यके द्वारा हमारी रक्षा नहीं हो सकती अर्थात् उनके अतिरिक्त अन्य कोई भी हमारा रक्षाकर्ता नहीं है—ऐकान्तिक-भक्तका सदा ऐसा ही विश्वास होता है।"

(चैतन्य-शिक्षामृत, षष्ठ वृष्टि, तृतीय धारा)

प्रश्न २—व्यवहारिक दुःख उपस्थित होनेपर ऐकान्तिक नामाश्रित-भक्त क्या करते हैं?

उत्तर—"भक्ष्य आच्छादन यदि सहजे ना पाय।
अथवा पाइया कोन गतिके हाराय॥
नामाश्रित भक्त अविक्लवमति हञा।
गोविन्दशरण लय आसक्ति छाड़िया॥"

(भजन-रहस्य, चतुर्थ यामसाधन)

[अर्थात् एकमात्र श्रीगोविन्दके नामका आश्रय लेनेवाले ऐकान्तिक-भक्त भोजन एवं वस्त्र सरलतासे प्राप्त नहीं होनेपर अथवा उपलब्ध सामग्री नष्ट हो जानेपर भी स्थिर-चित्त रहते हैं तथा विषयोंके प्रति अनासक्त होकर श्रीभगवान्‌की शरण लेते हैं।]

प्रश्न ३—क्या परा-मुक्ति या परा-भक्ति पृथक् तत्त्व हैं?

उत्तर—"मुक्ति तथा परा-भक्तिमें कोई भी भेद नहीं है। अपितु जो इनमें भेद करते हैं, उन्हें इन दोनोंमें-से किसी भी तत्त्वका अनुभव नहीं है—यही मानना होगा।"

(तत्त्वसूत्र, १९)

प्रश्न ४—ऐकान्तिक-भक्त भक्तिके किन-किन अङ्गोंका याजन करते हैं?

उत्तर—"ऐकान्तिक कृष्णभक्तोंको श्रीकृष्ण-स्मरण तथा श्रीकृष्ण-कीर्तन ही अत्यन्त प्रिय होता है। वे प्रायः इन दो अङ्गोंके अतिरिक्त अन्य अङ्गोंका पालन करनेमें व्यस्त नहीं होते।"

(समालोचना, सज्जन-तोषणी १०/६)

प्रश्न ५—नाम-साधकोंका किन विषयोंमें आग्रह होना आवश्यक है?

उत्तर—"जो नामसाधनके द्वारा फल प्राप्तिकी इच्छा करते हैं, उनका तीन विषयोंमें विशेष आग्रह होना आवश्यक है—साधुसङ्ग, सुनिर्जन (असत्सङ्गसे दूर केवल साधुसङ्गमें वास) तथा अपना सुदृढ़भाव या पराकाष्ठा; इसे 'निर्बन्ध' कहा जाता है।"

(भजन-प्रणाली, हरिनाम-चिन्तामणि)

प्रश्न ६—निर्बन्ध शब्दका क्या अर्थ है?

उत्तर—"निर्बन्ध शब्दका अर्थ है—साधक १०८ संख्यक तुलसीमालापर सोलह नाम, बत्तीस अक्षर युक्त महामन्त्रका जप करेंगे। चार माला करनेको एक 'ग्रन्थ' कहते हैं। एक ग्रन्थसे आरम्भ करके साधकको क्रमशः नाम-जप बढ़ाते हुए सोलह ग्रन्थ (अर्थात् ६४ माला जप) करना चाहिए। ऐसा करनेसे एक लाख नाम-जपका निर्बन्ध हो जाएगा। नाम-जप बढ़ाते हुए क्रमशः तीन लाख नाम करनेपर सारा समय नाममें ही व्यतीत होगा। समस्त पूर्व महाजनोंने महाप्रभुका यही आदेश पालनकर सर्वसिद्धि प्राप्त की है।"

(प्रमाद, हरिनाम-चिन्तामणि)

प्रश्न ७—क्या व्यवधान-दोष परित्यज्य नहीं है?

उत्तर—"नाम निरन्तर होना आवश्यक है, अर्थात् नामग्रहणके समय अन्य इन्द्रियोंकी क्रियाओंका व्यवधान नाम-जपमें विघ्न न पहुँचाए, इसका ध्यान रखना अत्यावश्यक है।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति, श्रीभागवतार्क-मरीचि-माला १३/१५)

प्रश्न ८—नामग्रहणके समय साधककी चित्तवृत्ति कैसी होनी चाहिए?

उत्तर—"नाम जप करते समय हमारे हृदयमें ऐसी आशा होनी चाहिए—एक पक्षीके अजात-पक्ष (जिनके पंख भी नहीं निकले, ऐसे) बच्चे जिस प्रकार अपनी माताको देखनेके लिए लालायित रहते हैं, भूखसे पीड़ित बछड़े जिस प्रकार अपनी माताका स्तन पान करनेके लिए प्रतीक्षा करते हैं, जिस प्रकार एक प्रिया विदेश गये हुए अपने प्रियतमके दर्शनके लिए

उत्कण्ठित रहती है, उसी प्रकार [हे प्रभु] मेरा मन भी आपके दर्शनोंकी लालसासे व्यग्र रहे।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया–भक्ति, श्रीभागवतार्क मरीचि माला १०/१६)

प्रश्न ९—क्या नामाश्रित व्यक्तियोंके लिए कर्म–ज्ञानसम्मत प्रायश्चित्त करना उचित है?

उत्तर—"जिन्होंने नामाश्रय किया है, उनके लिए कर्म–ज्ञानसम्मत अन्य प्रायश्चित्त करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया–भक्ति, श्रीभागवतार्क मरीचि माला १३/१६)

प्रश्न १०—ऐकान्तिक नामाश्रित व्यक्तिका आचरण कैसा होना चाहिए?

उत्तर—"काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य—इन छः प्रकारकी चित्तवृत्तियोंके अपव्यवहारसे ही पाप होते हैं। जिन्होंने एकान्तरूपसे नामका आश्रय लिया है, वे कोई पाप नहीं करते। वे कृष्ण–कथाओंमें तथा कृष्णकी सेवामूलक वैष्णव–संसारमें '**काम**'को नियुक्तकर परस्त्रीसङ्ग, आवश्यकतासे अधिक अर्थ–संग्रह, प्रतिष्ठा प्राप्तिके लिए आतुरता, वञ्चना तथा चोरी करना जैसे दुष्ट कर्म और नहीं करते। वे कृष्ण एवं वैष्णव विद्वेषियोंके प्रति '**क्रोध**'को नियुक्तकर बहिर्मुख सङ्गसे दूर रहते हैं, अतएव परपीड़न तथा प्रतिहिंसा जैसी क्रियाओंसे विरत रहते हैं। ऐसेमें उनका क्रोध वृक्षकी भाँति सहिष्णुतामें परिणत हो जाता है। वे '**लोभ**'को कृष्ण–रसास्वादनमें नियुक्त कर देते हैं, जिसके फलस्वरूप वे अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र, सुन्दर स्त्रीका सङ्ग तथा अत्यधिक अर्थ–सञ्चयकी ओर दृष्टि भी नहीं डालते। '**मोह**'को चिद्–रसमें नियुक्तकर कृष्णलीला–सौन्दर्य तथा वैष्णव–चरित्रसे मोहित होते हैं; फलस्वरूप धन–जन तथा जड़–सुखादिमें मोहित नहीं होते, असत्सिद्धान्तोंके प्रति मोहित होकर मायावाद या नास्तिक्यवाद तथा कुतर्कप्रियता आदिमें मनोनिवेश नहीं करते। '**मद**'को कृष्णदास्याभिमानमें नियुक्तकर जातिमद, धनमद, रूपमद, विद्यामद, जनमद तथा बलमदको दूरसे परित्याग कर देते हैं। '**मात्सर्य**' अर्थात् परहिंसाके द्वारा आत्मोकर्षसाधनको (अपना जागतिक हित साधित करनेकी चेष्टाका) पूर्णरूपसे त्याग कर देते हैं। इस प्रकारका नियमित जीवन यापन करनेसे पापका उदय नहीं होता, पापकी प्रवृत्ति भी समूल नष्ट हो जाती है। तथापि कभी किसी घटनाक्रमसे कोई पाप हो सकता है, तो वह पाप बिना किसी प्रायश्चित्तके ही शान्त हो जाता है।"

(नामके बलपर पापप्रवृत्ति—एक नामापराध, सज्जन तोषणी ८/९)

प्रश्न ११—मतवादकी कपटताका आश्रय करनेवाले नामसाधकब्रुव (तथाकथित नामसाधक) व्यक्तिको क्या प्रेम प्राप्त होता है?

उत्तर—"जिस प्रकार औषधि तथा मन्त्रकी शक्तिका ज्ञान नहीं रहनेपर भी रोगी फल प्राप्त करता है, उसी प्रकार नामकी शक्तिसे अवगत नहीं होनेपर भी जो व्यक्ति नाम करते हैं, उन्हें अनायास ही नामका फल प्राप्त हो जाता है। यदि मतवादके द्वारा कुसंस्कृत व्यक्ति कपटताका आश्रय करके नाम उच्चारण करता है, तब नाम भी उसकी कपटताके अनुरूप फल देनेकी शक्ति रखते हैं तथा ऐसे कपटियोंको वैसा ही फल देते हैं, प्रेम आदि उच्च फल प्रदान नहीं करते।"

(ऐकान्तिकी नामाश्रया भक्ति, श्रीभागवतार्क मरीचि माला १३/२४)

प्रश्न १२—प्रकृत (वास्तविक) व्रजवास कैसा होता है?

उत्तर—"अप्राकृत भावोंके साथ निर्जन–वास ही 'व्रजवास' है। संख्यापूर्वक हरिनाम करते हुए अष्टकालीय–सेवा करनी चाहिए। समस्त देहयात्रा जिससे विरोधी न हो पड़े ऐसा सोच–विचारकर अपनी समस्त क्रियाओंको इस प्रकार करना चाहिए कि हमारी शरीर–यात्राका निर्वाह भी हो जाए तथा वे क्रियाएँ भगवद्भजनके अनुकूल भी हों।"

(जैवधर्म, अध्याय ४०)

[श्रील भक्तिविनोद वाणी–वैभवसे अनुदित]

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का वाणी-वैभव

श्रीश्रीसरस्वती-संलाप

प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, अधोक्षज एवं अप्राकृत-तत्त्वके सम्बन्धमें हरिकथा

(वर्ष २०, संख्या १-४ से आगे)

"कृष्ण भूलि" सेइ जीव—अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसारादि दुःख॥

चै० च० मध्य० (२०/११७)

[कृष्णको भूलनेसे ही जीव अनादि कालसे बहिर्मुख है, इसलिए माया उसे संसारादि विविध प्रकारके दुःख प्रदान करती है।]

यया सम्मोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम्।
परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते॥

श्रीमद्भा० (१/७/५)

[इसी मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक अर्थात् सृष्टि, स्थिति और लयके अन्तर्गत 'प्राकृत' कहकर अभिमान करता है और इस त्रिगुणजात अभिमानके कारण ही अपनेको कर्त्ता और भोक्ता मानकर सांसारिक भोगोंकी वासनाको प्राप्त करता है।]

जीव—अर्थात् जिसमें जीवन है, किन्तु वह मायाके द्वारा अभिभूत (वशीभूत) होने योग्य है; जीव चेतन है, किन्तु वह पूर्ण नहीं—अपूर्ण है, अन्यथा पूर्णके विपरीत भावको जीव क्यों preference (प्राथमिकता) देता है? जीव मायाके ऊपर प्रभुत्व करनेका प्रयास करता है, परन्तु वस्तुतः मायाका दासत्व ही किया करता है।

'मायाधीश', 'मायावश' — ईश्वरे जीवे भेद।

चै० च० मध्य० (६/१६२)

[ईश्वर स्वभावसे ही मायाके ईश्वर हैं, जीव स्वभावसे ही अणु-चैतन्य होनेके कारण मायावश योग्य है। ईश्वर और जीवमें यही भेद है।]

माया द्वारा वशयोग्य जीव जैसे ही माया-धर्म अर्थात् 'मापे जाने योग्य' धर्मकी currency (मुद्रा) प्राप्त करता है, वह माया द्वारा भलीभाँति मूर्ख बना दिया जाता है। माया जीवकी चेतनवृत्तिको ढक देती है। 'आत्मानं त्रिगुणात्मकं मनुते'—वह जीव स्वयंको (आत्माको) जन्म-स्थिति-मृत्यु—रज, सत्त्व एवं तमोगुणके अधीन मानता है। अवश्य ही [प्रकृतिके ये तीन] गुण preponderating हैं—एकके ऊपर एक प्रभुत्व करते हैं। आत्मा होने पर भी जीव उन

गुणोंके द्वारा आच्छादित हो जाता है। 'परोऽपि' अर्थात् मायाके तीन गुणोंसे स्वरूपतः अतीत होने पर भी वह निज प्रयोजन सिद्धिमें unsuccessful (असफल) होता है; *'तत्कृतं अनर्थञ्च अभिपद्यते'*—तथा आत्माके त्रिगुणत्व-अभिमानकृत अनर्थ अर्थात् कृष्णबहिर्मुख संसारको भोगनेकी वासनाको प्राप्त करता है।

'माप लूँगा' धर्ममें frustrated (विफल-मनोरथ) होनेकी योग्यता है। इस माया-धर्मके अनुसरणके द्वारा कभी भी जीवके अनर्थोंकी शान्ति सम्भव नहीं होगी। माता यशोदाने पहले जब रस्सी लेकर कृष्णको बाँधनेका प्रयास किया था, तब कृष्ण '*अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्*'[१] [अर्थात् असीम परम पुरुष होनेके कारण माताके परिमित प्रयाससे वशीभूत नहीं हुए]; किन्तु जैसे ही माताके हृदयमें कृष्णकी सेवाका विचार अर्थात् कृष्णपर सम्पूर्ण निर्भरता प्रकाशित होती है, तभी कृष्ण साधारण मनुष्यकी भाँति हो जाते हैं—बँधन स्वीकार कर लेते हैं। श्रीकृष्ण द्वारा अपने उदरमें दामबँधन-स्वीकार करनेकी इस लीलामें आध्यक्षिक [जड़-इन्द्रियोंकी चेष्टासे प्राप्त ज्ञान पर निर्भर] लोगोंका आरोह-पन्थका प्रयास सम्पूर्ण रूपसे खण्डित हुआ है तथा अवरोह-पन्थमें अधोक्षज [जड़-इन्द्रियोंकी चेष्टासे प्राप्त ज्ञानसे अतीत] लीला-पुरुषोत्तम स्वराट्, स्वेच्छामय, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र पुरुष (श्रीकृष्ण)का स्वराज्य-सिंहासन प्रतिष्ठित हुआ है। भक्तवत्सल भगवान् भक्तकी भक्तिके द्वारा ही बँधन स्वीकर करते हैं, अन्य किसी भी उपायसे कोई भी उनको अपने वशमें नहीं ला सकता। ब्रह्मा आदि देवगण कह रहे हैं—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदंघ्रयः॥

श्रीमद्भा० (१०/२/३२)

[हे कमलनयन! जो व्यक्ति स्वयंको 'मुक्त' मानकर अभिमान करते हैं, वे आपमें भक्तिशून्य होनेके कारण अविशुद्ध बुद्धिवाले हैं। वे अनेक कष्ट उठाकर मायासे अतीत परमपद ब्रह्म तक आरोहण करने पर भी भगवद्भक्तिका अनादर करनेके कारण अधःपतित हो जाते हैं।]

यदि एक व्यक्तिका एक पाँव यहाँ पर है और वह दूसरा पाँव उठाकर दूर कहीं और रखने का विचार करता है, तो ऐसेमें उसका अधःपतन ही होता है। आध्यक्षिक ज्ञानसे उत्पन्न कपटता एवं पाप रूपी कटुतासे जिनकी मति दुष्ट हो गयी है, ऐसे अभक्त ज्ञानीगण "*अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः*" [अर्थात् अविद्यामें रहकर भी स्वयंको धीर और पण्डित मानना] इस विचारसे विज्ञाभिमानी ('मैं सबकुछ जाननेवाला हूँ' इस अभिमानसे युक्त) होकर भगवद्भक्तिरहित होनेके कारण मुक्ति-पिशाचीका बहुत आदर करते हैं तथा मोक्षको प्राप्त करनेके लिए ज्ञान, वैराग्यके अभ्यासका विधिसहित पालन करनेके फलस्वरूप मोक्षपीठके अति निकट स्थान तक भी अधिरोहण कर लेते हैं; परन्तु भगवद्चरणकमलोंकी नित्यसेवाके विचारका अनादर करनेके कारण अपराधवशतः कृष्णकृपा-रज्जुसे पृथक् हो जाते हैं तथा ज्ञानके परमोच्च पद (मोक्ष) से च्युत होकर अज्ञानके अन्धकारमें अर्थात् इस मायिक संसार रूपी तमिस्रमें (भयानक नरकमें) पतित होते हैं।

इसलिए ब्रह्माजीने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके परवर्ती १४वें अध्यायमें 'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य'[२], 'श्रेयःसृतिं

१ (कृष्ण) वे परम पुरुष (हैं) जो जीवके हृदयमें स्थित अन्तर्यामी दशाङ्गुल पुरुषको भी अतिक्रम करके विराजमान हैं। (पुरुष-सूक्त, मन्त्र संख्या १)

२ ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्॥
श्रीमद्भा० (१०/१४/३)

[इन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञानकी सहायतासे इन्द्रियातीत वस्तुको प्राप्त करनेकी चेष्टाका नाम आरोहवाद या अश्रौतपन्थ है। परन्तु जो ज्ञानके लिए कुछ प्रयत्न न कर कायमनोवाक्यसे साधुमुखसे निःसृत आपकी लीला-कथाओंका सत्कारकर जीवन धारण करते हैं, उनके

भक्तिमुदस्य'[३], 'अथापि ते देव'[४] आदि श्लोकोंमें बहिर्मुख-ज्ञान-प्रयासका सम्पूर्णरूपसे निराकरण करते हुए भगवत्-चरणकमलोंमें सर्वतोभावसे समर्पितात्मा भक्तका विचार प्रदर्शित किया गया है।

अधोक्षज श्रीभगवान्‌के प्रति भक्तिका विचार आनेके साथ-ही-साथ जीवके ये समस्त अनर्थ अर्थात् उसकी प्रयोजन सिद्धिके सभी विघ्न दूर हो जाते हैं। भक्तराज प्रह्लाद अपने विष्णु-विरोधी पिता हिरण्यकश्यपुको लक्ष्य करके निर्भीक भावसे कह रहे हैं—

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमांघ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥

श्रीमद्भा० (७/५/३२)

[जब तक निष्किञ्चन भगवद्भक्तोंकी चरणधूलिके द्वारा अभिषिक्त नहीं हुआ जाए, तब तक गृहव्रती लोगोंकी मति समस्त अनर्थोंका नाश करनेवाले श्रीकृष्ण-चरणकमलोंका स्पर्श नहीं कर सकती।]

भजनीय वस्तु श्रीभगवान्‌का भजन करनेकी वासना ही भक्तिकी वृत्ति है। यदि ये तीनों अर्थात् भजनकर्त्ता मैं, भजनीय वस्तु श्रीभगवान् और भजन—अधोक्षज नहीं होते, तो इसका अर्थ है कि मैं जड़ प्रत्यक्ष, परोक्ष और जड़निर्विशेष अपरोक्ष तत्त्वोंका सेवक होकर आध्यक्षिक हो गया हूँ। Gross या subtle—स्थूल या सूक्ष्मकी Chemical Laboratory (रासायनिक प्रयोगशाला) में, पृथ्वीपर, अकाशमें अथवा वायुयानमें सौ-सौ वर्षों अथवा युग-युगान्तर तक चेष्टा करने पर भी उस अधोक्षज वस्तुके विषयमें (जड़ इन्द्रियोंके द्वारा) नहीं जाना जा सकता। उस अधोक्षज वस्तुको कौन जान सकता है, इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें बताया गया है—

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्रीशूद्र हूणशबरा अपि पापजीवाः।
यद्यद्भुतक्रम-परायण-शीलशिक्षा
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये॥

श्रीमद्भा० (२/७/४६)

[जो व्यक्ति भगवान्‌के प्रति ऐकान्तिक रूपसे आश्रित प्रेमीभक्तोंका आनुगत्य स्वीकार करके उनके द्वारा आचरण किये जानेवाले भक्तिधर्मकी शिक्षा प्राप्त करते हैं, वे स्त्री, शूद्र, हूण, शबर इत्यादि पाप-जातिके होनेपर भी, अथवा पापके कारण हंस, गज, शुक, सारिका आदि पशु-पक्षी योनि प्राप्त करके भी भगवान्‌की मायाको जानकर संसार-सागरसे पार हो सकते हैं। अतएव जो समस्त मनुष्य श्रीगुरुके मुखसे भगवान्‌के नाम-रूपादिका श्रवण करके भगवान्‌के उस स्वरूपको हृदयमें धारण करते हैं, वे भगवान्‌की उस मायाको

द्वारा कोई कर्म न करनेपर भी आप अजित होकर उनके द्वारा जीत लिए जाते हैं। आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं।]

३ श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवल बोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥
श्रीमद्भा० (१०/१४/४)

[हे प्रभो! परम कल्याण स्वरूप आपको पानेके लिए भक्ति ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। जिस प्रकार जलाशयसे निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार भक्तिसे ही मोक्ष आदि चारों फल प्राप्त होते हैं। भक्ति होनेपर ज्ञान अपने आप आ जाता है, उसके लिए अलगसे प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जो लोग भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको केवल क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है, और कुछ नहीं; जैसे थोथी भूसी कूटनेवालेका केवल श्रम ही होता है, उसे चावल नहीं मिलता॥]

४ अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-प्रसाद-लेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥
श्रीमद्भा० (१०/१४/२९)

[हे देव! जो व्यक्ति आपके युगल-चरणकमलोंका तनिक-सा भी कृपाप्रसाद प्राप्त कर उससे अनुगृहीत हो जाता है, वही आपकी सच्चिदानन्दमयी महिमाका तत्त्व जान सकता है। दूसरा कोई भी ज्ञान-वैराग्य आदि अपने साधनोंके द्वारा बहुत समय तक भी अनुसन्धान क्यों न करता रहे, वह आपकी महिमाका यथार्थ तत्त्व नहीं जान सकता।]

जानकर उसे अनायास ही निश्चित रूपसे पार कर जाते हैं—इस विषयमें फिर आश्चर्य ही क्या है?]

मनुष्य अपने प्राकृत ज्ञानके द्वारा यह discover (उपलब्धि) नहीं कर सकता कि अधोक्षज भगवान्‌के प्रति भक्तियुक्त होनेपर ही वह अपने समस्त अनर्थोंसे चिरकालके लिए मुक्त हो जाता है। इसीलिए अप्राकृत ज्ञानमें दक्ष, परम विद्वान श्रीवेदव्यासने सात्वतसंहिता श्रीमद्भागवतकी रचना की है। इस श्रीमद्भागवतका श्रवणपरायण होनेपर जीवके हृदयमें परमपुरुष श्रीकृष्णके प्रति भक्तिका उदय होता है एवं उस भक्तिके आनुषङ्गिक फलस्वरूप ही शोक, मोह, भय आदि सम्पूर्ण रूपसे विनष्ट हो जाते हैं। अधोक्षज भगवान्‌की कथाका श्रवण एवं कीर्तन नहीं करनेके समय ही जीवको द्वितीय अभिविनिवेशके फलस्वरूप विश्वके अन्तर्गत सांसारिक विचारों—भय, शोकादि द्वारा वशीभूत हो जाना पड़ता है। श्रवणका सुष्ठु (अप्राकृत स्रोतसे) होना आवश्यक है। इस मायिक जगत्‌के शब्द एवं शब्दीमें भेद है (शब्द द्वारा निरूपित वस्तु एवं शब्द, ये दो भिन्न वस्तुएँ हैं)। इस भेदयुक्त जगत्‌के खण्डित (अपूर्ण) विचारसे मुक्त होनेका एकमात्र उपाय है—सद्‌गुरुके मुखसे अप्राकृत शब्दब्रह्मका श्रवण करना। परव्योम (अप्राकृत जगत्) के शब्द और शब्दी भेदरहित हैं। भेदयुक्त (मायिक) शब्दके श्रवण द्वारा अधोक्षज वस्तुका साक्षात्कार सम्भव नहीं है, अपितु मायिक चौदह भुवनोंमें ही अवागमन चलता रहेगा। शोक, मोह और भय हमारी वर्तमान जगत्‌की धारणाके साथ प्रबल रूपसे जुड़े हुए हैं। उनसे मुक्ति पानेके लिए हमें सेवोन्मुख होकर भक्त-भागवतके श्रीमुखसे ग्रन्थ-भागवतमें वर्णित अधोक्षज परमपुरुष श्रीकृष्णकी भक्तिकी कथा श्रवण करनी होगी। भगवद्भक्तोंके association (सङ्ग) में ही शोक-मोह-भयका हरण करनेवाली भक्तिका उदय होगा तथा भजनके गूढ़ रहस्योंकी उपलब्धि होगी।

ब्रह्मज्ञान, परमात्म-सान्निध्य और भगवद्भक्ति। 'भक्ति' शब्द केवल भगवान्‌के सम्बन्धमें ही व्यवहार होता है, ब्रह्म एवं परमात्माके सम्बन्धमें नहीं होता।

श्रीमद्भागवतमें एक और श्लोकमें अधोक्षजके विषयमें कहा गया है—

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं
यदीयते तत्र पुमानपावृतः।
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो
ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते॥

श्रीमद्भा० (४/३/२३)

उपरोक्त श्लोक वैष्णवराज श्रीशम्भुने सती देवीके द्वारा अपने पिताके घर जानेकी अनुमतिकी प्रार्थना करनेपर उनसे कहा था। साधारण अज्ञानी लोगों द्वारा ऐसा पूर्वपक्ष रखनेपर कि, 'शिवने अपने श्वसुर दक्षके यज्ञस्थल पर आगमनपर उनके अभिवादन आदिके द्वारा उनके प्रति बाह्य सामाजिक शिष्टाचारका प्रदर्शन क्यों नहीं किया?' इस पूर्वपक्षको निरस्त करते हुए स्वयं श्रीशम्भुने उसकी मीमांसा करते हुए कहा था—विज्ञजन (ज्ञानी लोग) बहिर्मुख देहाभिमानीके देहाभिमानका कायिक भद्र-व्यवहाररूपी अभिवादनके द्वारा आदर नहीं करके अपने मनके द्वारा उस बहिर्मुख व्यक्तिके हृदयमें विराजमान अन्तर्यामी परमपुरुष—वासुदेवके प्रति ही नमस्कार आदि किया करते हैं। "अप्राकृत विशुद्ध हृदय ही 'वसुदेव' शब्दसे अभिहित (परिचित) होता है। आवरण-शून्य अर्थात् स्वरूप-शक्तिकी वृत्तिमें अवस्थित स्वप्रकाश-शक्तिके लक्षणसे युक्त पुरुष (श्रीभगवान्) उस विशुद्धसत्त्व युक्त हृदयमें प्रकाशित होते हैं, उनका नाम 'वासुदेव' है। वे षड़ैश्वर्यशाली भगवान् अधोक्षज अर्थात् प्राकृत इन्द्रियज्ञानसे अतीत पुरुषोत्तम हैं। वे विशुद्ध सेवोन्मुख अप्राकृत अन्तःकरणमें नित्य प्रकाशमान होते हैं। मैं उन भगवान्‌को विशेष रूपसे नमस्कार करता हूँ।"

क्रमशः

[श्रीसरस्वती-संलापसे अनुदित]

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव
गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी पत्रावली

(पत्र-१९)

चातुर्मास्य व्रत तथा रथयात्रानुष्ठान प्रसङ्ग

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ,
चौमाथा, पोः-चुचुड़ा (हुगली)
१२/७/१९६२

स्नेहास्पदेषु—

---! मुझे तुम्हारा पत्र कल ही प्राप्त हुआ है। हमारी पञ्जिकामें '२८ आषाढ़, गौर-एकादशी' लिखा हुआ है, किन्तु बड़े-बड़े [मोटे] अक्षरोंमें 'एकादशी उपवास' नहीं छपा है। तथापि '२९ आषाढ़को एकादशी पारण' लिखा हुआ है। अतः मुद्राकर-भूल-भ्रान्तिवशतः [२८ आषाणको] 'उपवास' नहीं लिखे जानेपर भी पारण देखनेसे ही उपवासका पता चल जाता है। इस दिन शयन-एकादशी है, अतः २८ आषाढ़ शुक्रवारको एकादशीका उपवासकर शनिवारको पूर्वाह्न ९:२९ बजेसे पहले पारण करना।

चातुर्मास्य-व्रतके सम्बन्धमें हरिभक्तिविलासमें जो विचार दिया गया है, उसीके अनुरूप हमारी पञ्जिकामें लिखा गया है। द्वादशीपक्षसे (आषाढ़की द्वादशी तिथिसे) चातुर्मास्य-व्रत आरम्भ किया जा सकता है एवं पूर्णिमाके दिनसे भी चातुर्मास्य आरम्भ हो सकता है। अथवा सौर-मासकी १ तारीखसे भी अर्थात् १ श्रावणसे भी चातुर्मास्य आरम्भ किया जा सकता है। इस वर्ष पूर्णिमा भी १ श्रावणके दिन होनेके कारण दोनों ही पक्षोंके लिए (अर्थात् चान्द्र-मास एवं सौर-मासका अवलम्बन करनेवालोंके लिए) चातुर्मास्य-व्रतका प्रारम्भ एक ही दिनसे है। विशेष विचारणीय यह है कि—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अनुगत जनगण तथा श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत गौड़ीय सम्प्रदायके त्रिदण्डि-संन्यासियोंके लिए पूर्णिमाके दिनसे ही चातुर्मास्य-व्रत प्रारम्भ करना कर्त्तव्य है। विशेषतः 'मास' कहनेसे चान्द्र-मास पूर्णिमासे ही प्रारम्भ होता है। 'चातुर्मास्य' कहनेसे [आषाढ़] पूर्णिमासे [कार्तिक] पूर्णिमा तक चार महिनोंको ही चातुर्मास्य कहा जाता है। गृहस्थ लोग [आषाढ़] पूर्णिमाके दिन ही क्षौरकार्य (मुण्डन) करके व्रत आरम्भ करेंगे, अन्य किसी भी विधिसे नहीं करेंगे। शास्त्रज्ञानके अभावके कारण ही सर्वत्र (ग्राम-बस्तियोंमें) भिन्न-भिन्न मतोंकी सृष्टि हो रही है। हमारी पञ्जिकामें चातुर्मास्यकी

विधि हरिभक्तिविलासके प्रमाणके सहित ही दी गयी है। नीचे उसका अनुवाद तथा श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका विवरण पढ़नेके लिए निर्देश दिया गया है। हमारी पञ्जिकाको अच्छी प्रकारसे पढ़ना। हमने पञ्जिकामें जो लिखा है, वह ठीक ही है। केवल थोड़ी-सी बुद्धि प्रयोगकी आवश्यकता है।

हमारी श्रीचैतन्य-पञ्जिकामें ४७६ गौराब्दकी अर्थात् वर्तमान वर्ष (१९६२ ई०) की रथयात्रा, हेरापञ्चमी, पुनर्यात्रा आदि तिथियाँ सब ठीक ही लिखी गयी हैं। बंगालके अन्य समस्त पञ्जिका बनानेवालोंने भूल की है। यहाँ तक कि संवादपत्र वालोंने भी जनसाधारणको धोखा देते हुए चतुरतापूर्वक रथयात्राके सम्बन्धमें संवाद दिया है। पुरीमें श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्रा हमारी पञ्जिकामें लिखी तिथिके अनुसार ही हुई है। हमारी पञ्जिकामें १९ आषाढ़, बुधवारको रथयात्रा लिखी गयी है तथा उस दिनके विषयमें हरिभक्तिविलासका प्रमाण-स्वरूप एक श्लोक भी दिया गया है। उसमें मोटे अक्षरोंमें लिखा गया है—"रथयात्राश्च जगन्नाथानुसारतः कारयेत्।" अतः रथयात्रा पुरीमें जैसे होगी, वैसे ही करनी होगी। [अर्थात् रथयात्राका अनुष्ठान पुरीमें जिस प्रकार जिस तिथिमें किया जाएगा, हमें भी वैसा उसी तिथिमें ही करना होगा।] हम प्रतिज्ञा करके कह रहे हैं तथा इसी सम्बन्धमें संवाद भी प्राप्त हुआ है—पुरीका रथ बुधवारको ही हुआ है, मङ्गलवारको नहीं हुआ। यदि किसीने 'पुरीमें रथयात्रा मङ्गलवारको हुई है'—ऐसा लिखा है, तो उसने मिथ्या लिखा है। वह जाली (मिथ्याभाषी), प्रतारक (धोखेबाज) है। हम शास्त्रज्ञानहीन पाखण्डी पञ्जिका बनानेवालोंकी बात नहीं मानते। [इस विषयमें] हमारी पञ्जिका ही ठीक है, अन्य सभीमें भूल है। इति—

"रथयात्राश्च जगन्नाथानुसारतः कारयेत्।" [अर्थात् रथयात्राका अनुष्ठान पुरीमें जिस प्रकार जिस तिथिमें किया जाएगा, हमें भी वैसा उसी तिथिमें ही करना होगा।]

नित्यमङ्गलाकाङ्क्षी—

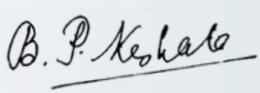

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव

[श्रीगौड़ीय पत्रिका-वर्ष-४१, संख्या-१० से अनुदित]

श्रीगौड़ीय-पत्रिकाका तीसवाँ वर्ष

श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजका वाणी-वैभव

आश्रय और विषयके भेदसे गौड़ीयका अप्राकृतत्व

'श्रीगौड़ीय पत्रिका' शुभ तीसवें वर्षमें प्रविष्ट हुई हैं। प्राकृत कालकी गणनामें भूत, भविष्य और वर्तमान—ये तीन अंश दिखायी देते हैं। परन्तु अप्राकृत क्षेत्रमें इस प्रकारका आंशिक विचार नहीं है। वहाँ नित्य वर्तमान काल ही प्रचलित है, क्योंकि सेव्य, सेवक और सेवा—ये तीनों नित्य होनेके कारण लीलाकी भी नित्यता स्वीकृत हुई है। आश्रय-विषयके भेदसे 'श्रीगौड़ीय' नित्यलीलामें अनुरक्त हैं। 'निताईके चरण सत्य हैं, उनके सेवक नित्य हैं'—यही गौड़ीयकी विशेषता है।

श्रीगुरु-गौड़ीयकी सेवाकी पुनरावृत्ति करते हुए जयगान

उनतीसवें वर्षमें श्रीपत्रिकाने श्रीगौर-राधा-विनोदविहारीजीको निज वक्ष [आवरण पृष्ठ] पर धारण करते हुए उनके अन्तरङ्ग प्रियजनोंको हृदयरूपी गुफामें छिपाकर रखा था। उन भगवद्-प्रियजनोंकी शुभेच्छासे ही श्रीपत्रिकाने उनकी अन्तर्कथाको जगत्के लोगोंके समक्ष एक वर्ष तक प्रकाश और प्रचार करनेमें कृपणता नहीं की है। श्रीगुरु-गौड़ीयने '*मा वद सत्यमप्रियम्*'—इस 'तुम भी चुप, हम भी चुप' की नीतिको अर्थात् सुविधावादको प्रश्रय नहीं देकर अचैतन्य विश्वमें निष्कपट वास्तव सत्य-कथाका उच्चस्वरमें कीर्तन किया है, कर रहे हैं और करेंगे। श्रीपत्रिकाके विभिन्न प्रबन्ध ही उसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सत्के साथ असत्का Compromise (समझौता) कदापि नहीं हो सकता, उसी प्रकार जिस प्रकार एक जड़वादी (भौतिक संसारमें रत) व्यक्तिके साथ आत्मकल्याणकी इच्छा करनेवालेका मिलन कदापि सम्भव नहीं है। जगत्के नास्तिक सम्प्रदायके लोग आसुरिक विचारमें व्यस्त हैं, वे लोग दुनियाके छोटे-बड़े सभीको अस्वीकार करनेको ही बड़ी बहादुरी मानते हैं। उनके हृदयमें मिथ्या अहङ्कार, ईर्ष्या, हिंसा, मात्सर्य आदि प्रबल रूपसे भरे रहते हैं। ऐसे लोगोंके लिए सम्पूर्ण या परम कल्याणके लिए विचार करना किस प्रकार सम्भव होगा? गौड़ीयकी करुणा-वितरण करनेवाली उज्ज्वल किरण उसी प्रकार उनको कदापि दिखायी नहीं देगी, जिस प्रकार उल्लू सूर्यकी किरण देख नहीं पाता है।

अप्राकृत लेखनी ही जीवके आत्यन्तिक कल्याणका कारण

पिछले वर्षमें प्रकाशित 'गौड़ीय दर्शनका इतिहास और वैशिष्ट्य' नामक दार्शनिक प्रबन्धसे सुधी पाठकोंको प्रचुर आनन्द प्राप्त हुआ है। 'तत्त्वविवेक या सच्चिदानन्द-अनुभूति' नामक प्रबन्ध भी दार्शनिक जगत्के लिए

एक अतुलनीय एवं विशिष्ट अवदान है। द्वादश वैष्णव महाजनोंका अप्राकृत इतिहास और वृत्तान्त आदि भी प्रकाशित हुए हैं। 'विश्वमिलनमें श्रीचैतन्यदेव' प्रबन्धमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका अवदान विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। तुलनात्मक समालोचना वाले प्रबन्ध भी विशेष चित्ताकर्षक और हृदयग्राही हैं। इसके अतिरिक्त पौराणिक आख्यान एवं प्रश्नोत्तरमूलक प्रबन्धादि भी पाठकोंको रुचिकर हुए हैं, इसमें संशय नहीं है।

नित्यमुक्त जनोंके उपदेश-निर्देश सर्वदा ग्रहणीय

जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अप्राकृत लेखनीसे प्रादुर्भूत तत्त्वसिद्धान्तोंसे पूर्ण प्रबन्ध जो बहुत पहले प्रकाशित हुए थे, अनेक लोगों द्वारा उनके पुनः मुद्रणके लिए विशेष अनुरोध करनेपर, वे सब धीरे-धीरे श्रीपत्रिकामें मुद्रित हो रहे हैं। आनेवाले समयमें इन सब दुर्लभ और दुष्प्राप्य प्रबन्धोंको पृथक् ग्रन्थके आकारमें प्रकाशित करनेकी इच्छा है। इससे श्रीपत्रिकाके पुराने और नये ग्राहकगण तथा सुधी पाठकगण सभी विशेष उपकृत होंगे।

महापुरुषोंकी लेखनीमें भी जीवके नित्य कल्याणकी चिन्ता

आजकल बहुत लोग उपन्यास और नाटकोंका पाठ करनेमें अभ्यस्त हैं। पारमार्थिक-अप्राकृत-साहित्यिक महाजन-गोस्वामीवर्गने पारमार्थिक-उपन्यास और नाटकोंकी रचना की है। यहाँ तक कि सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने भी 'प्रेमप्रदीप' नामक एक पारमार्थिक उपन्यासकी रचना करके ऐसे पाठकोंका पारमार्थिक कल्याण किया है। इसलिए हमने भी श्रीपत्रिकामें पारमार्थिक नाटक प्रकाशित करनेका प्रयास किया है। हमारा विश्वास है कि 'महाजनोंका विचार ही वास्तविक पथ है' तथा उसीमें जीवका कल्याण निहित है। निर्विशेष ब्रह्मवाद या विवर्त्तवादका आश्रय लेना आत्महत्याके समान है, आत्मकल्याण चाहनेवाले जीवके लिए वह कदापि आश्रय लेने योग्य नहीं है।

समन्वयवादी और निर्विशेष-ब्रह्मवादी—सभी नास्तिक

सर्वधर्म-समन्वयवादी और चित्-जड़-समन्वयवादी—दोनों एक ही गोष्ठीके हैं। समन्वयवादी स्वेच्छाचारी हैं। वे सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावोंकी एकाकारता देखना चाहते हैं। गीता-भागवतमें ऐसे युक्तिरहित विचारका प्रतिवाद किया गया है। मानवकी इच्छाके अनुसार धर्मकी सृष्टि नहीं हुई है। शास्त्रमें शुद्धभक्ति और श्रीभगवत्-प्रेमके स्वरूपकी व्याख्या दी गयी है। भोगवाद और भक्ति एक नहीं है। निर्विशेषवाद कल्पनासे उत्पन्न हुआ है, वह अपनी तथा दूसरोंकी वञ्चना करनेवाला नास्तिक्यवाद है।

श्रीमन्महाप्रभु और गोस्वामियों द्वारा मायावादका खण्डन

मायावाद और अद्वैत-ब्रह्मवाद श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं षड्गोस्वामियोंकी शिक्षा नहीं है। इन सभीने अभक्तिवादका खण्डन किया है। मायावादको विद्ध-अद्वैतवाद कहा जाता है। 'देहमें आत्मबुद्धि विवर्त्तका स्थान है'—नश्वर देह कदापि आत्मा-पदवाच्य नहीं हो सकता। देहात्मवादीको त्रितापोंकी यन्त्रणा ही मिलती है। जीव-ब्रह्मैकवादी नास्तिक तथा पाखण्डी होते हैं। मूर्ख और पापी लोग ही ऐसे अहङ्कारी जीवोंका बहुत सम्मान करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रकट रहते समय, विशेषकर उनके लीला-सङ्गोपनके बाद ऐसी बहुमुखी नास्तिकता और आसुरिक भावने जगत्पर आक्रमण किया था। यदि षड्गोस्वामी और श्रीरूपानुग-सारस्वत-गौड़ीय गुरुवर्ग इस धरातल पर न आते, तब इस अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित जगत्की क्या दुर्दशा होती, यह विचारणीय विषय है। हम गौड़ीय गुरुवर्गका जयगान करते हुए अपने नव-वर्षका वक्तव्य समाप्त कर रहे हैं। वे कलिके विविध उत्पातोंसे सदैव हमारी रक्षा करें—यही उनके श्रीचरणकमलोंमें सकातर प्रार्थना है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका, वर्ष-३०, संख्या-१ से अनुदित)

गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ गुह्य विचार एवं आत्माका नित्य धर्म

[श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा १५ फरवरी. २००२ ई० को मुर्विलम्भ, आस्ट्रेलियामें अंग्रेजी भाषामें प्रदत्त हरिकथासे उद्धृत अंशोंका भावानुवाद]

श्रील गुरुदेवके विदेश प्रचारमें जानेका कारण

[श्रील गुरुदेव—श्रील नारायण गोस्वामी महाराज, भक्तोंको सम्बोधित करते हुए—क्या आप बतला सकते हैं कि] हम संन्यासी ब्रह्मचारी भक्त-लोग भारतसे आस्ट्रेलिया क्यों आए हैं? और हम पृथ्वीके अनेकानेक स्थानोंमें क्यों भ्रमण कर रहे हैं? मैंने आप सभीको यहाँ आनेके लिए क्यों आमन्त्रित किया है तथा मैं इस वृद्धावस्थामें पूरे विश्वमें—संसारके कोने-कोनेमें क्यों भ्रमण कर रहा हूँ? मेरी मनोभावना और आन्तरिक उद्देश्य क्या है?

[कुछ भक्तोंके उत्तरके बाद श्रील गुरुदेव स्वयं ही कहते हैं—] मेरे यहाँ आनेका मुख्य कारण यह है कि आप सभी लोग मुझसे मिलने वृन्दावन नहीं आ सकते, इसलिए मैं यहाँ आपके समीप आया हूँ। मैं जानता हूँ कि आप सभी भारत नहीं जा सकते। मेरे यहाँपर आगमनके कारण ही आज स्थानीय लोग, वृद्ध, बच्चे, बालक, बालिकाएँ सभी यहाँ आ रहे हैं। मैं जानता हूँ कि यदि मैं आप लोगोंके पास नहीं आऊँगा, तो आप सभी पारमार्थिक स्तरपर दुर्बल हो जाएँगे। सभी लोग इन्द्रिय-तृप्तिकी क्रियाओंमें ही व्यस्त हो जाएँगे और पारमार्थिक विषयोंको कोई गुरुत्व नहीं देंगे। समयके व्यतीत होनेके साथ आप लोग पूर्वमें प्राप्त की गयी सभी पारमार्थिक शिक्षाओंको भी भूल जाएँगे।

इसी कारण श्रीकृष्ण समय-समयपर अपने पार्षदोंको विश्वमें विभिन्न स्थानोंपर भेजते हैं। श्रीनारद सर्वदा अनेक स्थानोंपर भ्रमण करते रहते हैं। यह हमारी गुरु-परम्पराकी रीति-नीति है—सभी स्थानोंपर जाकर भक्तिका प्रचार करना। इसीका अनुसरण करते हुए मैं यहाँ आया हूँ।

सर्वदा भगवान्‌के नामका जप और उनका स्मरण करते रहें

आपलोग प्रतिक्षण हमारे द्वारा कही जानेवाली सभी बातोंको समझनेका प्रयास करते हुए सर्वदा भगवान्‌के नामका जप और उनका स्मरण करते रहें। इससे ही आपकी रक्षा होगी। आपका धन, आपकी समस्त सांसारिक योग्यताएँ कदापि आपकी कोई सहायता नहीं कर सकतीं। इसी बातको समझाने हम यहाँ आए हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रील हरिदास

ठाकुरके साथ नगर-नगरमें जाते थे और सभीको क्या उपदेश देते थे? "आपलोग केवल हरिके नामोंका जप कीजिए, इससे आप अति सरलतापूर्वक जन्म-मृत्युके सागरसे पार हो जाएँगे और अपनी सभी समस्याओंसे भी मुक्त हो जाएँगे। यदि ऐसा नहीं होता, तो मैं उत्तरदायी हूँ।"

मैं भी यही कह रहा हूँ कि आप प्रतिदिन हरिनाम करें और यदि इससे आपको प्रसन्नताका अनुभव नहीं होता, तो इसका दायित्व मेरा है। परन्तु जो विधि मैं बतला रहा हूँ, उसका पालन करते हुए हरिनाम जप करना होगा। तब आप अवश्य ही सुखी हो पाओगे।

अब आप सभी मेरे साथ एकाग्र-चित्तसे चलें। मैं आप सबको नवद्वीपमें गङ्गाके तटपर गोद्रुम-कुञ्जमें लेकर जा रहा हूँ, जहाँ श्रीमन्महाप्रभु-के प्रिय परिकर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर बैठे हैं और वे जीवोंके कल्याणके लिए शिक्षामूलक उपदेश दे रहे हैं। गोद्रुम-कुञ्ज बहुत ही रमणीय स्थान है तथा सुन्दर लताओं और पुष्पोंसे सुशोभित है।

[श्रील गुरुदेव जैव-धर्मके प्रथम अध्यायके प्रसङ्गसे कुछ वर्णन करना आरम्भ करते हैं:]

वैष्णव सदाचारमें गुरु और शिष्यके बीच सर्वोपयुक्त व्यवहारका आदर्श

आप सभी जानते हैं कि किस प्रकार एक संन्यासी ठाकुर, जो वाराणसीमें वास करते थे, वे नवद्वीपमें प्रेमदास बाबाजी महाराजके निकट गये तथा उन्होंने बाबाजी महाराजके चरणकमलोंमें शरण ग्रहण की। संन्यासी ठाकुरने बाबाजी महाराजसे निश्चयपूर्वक यह निवेदन किया, "मैं जीवन भर आपके पास रहकर आपकी सेवा करना चाहता हूँ।" प्रेमदास बाबाजी महाराज यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले, "आप एक योग्य भक्त हैं। मैं भी यही चाहता हूँ कि आप सम्पूर्ण जीवन मेरे निकट वास करके भगवान्‌का भजन करें।"

एक दिन प्रेमदास बाबाजी महाराजने अपने शिष्य संन्यासी ठाकुरसे कहा, "मैं अपने शिक्षा-गुरु श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीके दर्शन करनेके लिए जा रहा हूँ। वे निकट ही नृसिंहपल्ली नामक स्थानपर वास करते हैं। हम गङ्गाकी एक शाखा-नदी—अलकानन्दाको पार करके वहाँ पहुँचेंगे। आज आप भी मेरे साथ उनके दर्शन करनेके लिए चलना।" इस प्रकार प्रेमदास बाबाजी महाराज अपने शिष्य संन्यासी ठाकुरको साथ लेकर उस स्थानपर गये।

श्रीनृसिंहपल्ली पहुँचकर जब प्रेमदास बाबाजी महाराजने दूरसे ही अपने गुरुदेवको देखा, तो देखते ही उन्होंने वहींसे गुरुदेवको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। 'साष्टाङ्ग' का क्या अर्थ होता है? जिस प्रकार एक लकड़ीका दण्ड नीचे गिरनेपर पूर्ण रूपसे पृथ्वीको स्पर्श करता है,

उसी प्रकार जब भक्त अपने शरीरके आठ अङ्गोंको[१] भूमिसे स्पर्शकर "श्रीगुरुदेवकी जय हो!" इस भावनासे प्रणाम करता है तो उसे 'साष्टाङ्ग-प्रणाम' कहते हैं।

जैसे ही श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीजीने अपने शिष्य प्रेमदास बाबाजी महाराजको देखा, वे अपने आसनसे उठ खड़े हुए और समीप आकर शिष्यको अपना आलिङ्गन प्रदान किया। यही एक योग्य शिष्य और एक योग्य गुरुके परस्परमें किये जानेवाले व्यवहारका आदर्श है। यद्यपि श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीजी गुरु हैं, शिष्यसे बहुत श्रेष्ठ हैं, परन्तु फिर भी अपने शिष्यको देखकर, अपने बालककी भाँति, उन्होंने शिष्यको उठाकर आलिङ्गन प्रदान किया।

तब वे दोनों मिलकर श्रीगौर-नित्यानन्द प्रभुकी महिमाके विषयमें वार्तालाप करने लगे। दोनों ही श्रीगौर-नित्यानन्दकी लीलाओंका स्मरणकर ठीक वैसे ही फूट-फूटकर क्रन्दन करने लगे जैसे श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामी परस्पर मिलनेपर क्रन्दन करते थे। परस्पर भेंट होनेपर वे सामान्य लोगोंकी भाँति परस्परके लौकिक कुशल-क्षेमके विषयमें कोई जिज्ञासा नहीं करते, अपितु केवल मात्र यही प्रश्न करते, "आपका भजन कैसा चल रहा है?"। कारण, यदि भजन ठीक है, तो सब कुछ ठीक है और यदि भजन ठीक नहीं है, तो कुछ भी ठीक नहीं है। भक्त व्यर्थके प्रजल्पमें अपना बहुमूल्य समय नष्ट नहीं करते।

जब संन्यासी ठाकुरने, जो पूर्वमें एक मायावादी संन्यासी थे, गुरु और शिष्यके बीच ऐसे उत्तम व्यवहारको देखा तो वह आश्चर्यचकित हो गये और अपने पूर्व कालको स्मरणकर विचार करने लगे कि मायावादी पन्थमें कोई भी इस प्रकारसे प्रणाम नहीं करता। ऐसा क्यों? क्योंकि वे मानते हैं कि वे 'ब्रह्म' हैं, इसलिए दूसरोंको क्यों प्रणाम करना? एक दूसरेको नारायण समझकर वे केवल "नमो नारायण, नमो नारायण" कहते हैं।

१ आठ अङ्ग अर्थात् हाथ, पैर, घुटने, वक्षस्थल, मस्तक, नेत्र, मन एवं वचन। (हरिभक्तिविलास ८.१६२)

परन्तु यहाँ वैष्णव सदाचारमें शिष्य स्वयंको अत्यन्त दीन-हीन, एक तिनकेसे भी अधिक निकृष्ट समझता है और अपने गुरुदेवको साक्षात्-हरि, स्वयं परमेश्वरका स्वरूप मानता है एवं उसी भावनासे उन्हें प्रणाम करता है। यही सर्वोपयुक्त व्यवहार है और यह भावना मात्र एक या दो दिनके लिए नहीं, अपितु सर्वकालीन है। इस प्रणाम करनेकी क्रियाको केवल बाहरी रूपसे ही नहीं, बल्कि आन्तरिक रूपसे भी अनुभव करते हुए किया जाना चाहिए।

फिर लगभग एक घण्टेके पश्चात्, जब उनकी हरि-चर्चा समाप्त हो गयी, तब श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीने प्रेमदास बाबाजीसे संन्यासी ठाकुरकी ओर इङ्गित करते हुए पूछा, "वह कौन है?" तब संन्यासी ठाकुरने अपने गुरुदेव प्रेमदास बाबाजीकी भान्ति ही श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अब संन्यासी ठाकुरने यह समझ लिया था कि अपने गुरुके समक्ष कैसा व्यवहार करना चाहिए, कैसे उचित ढङ्गसे उन्हें प्रणाम करना चाहिए और उनके साथ कैसे वार्तालाप करनी चाहिए।

दण्डवत् प्रणाम करके संन्यासी ठाकुरने अपना परिचय देते हुए कहा, "मैं श्रीप्रेमदास बाबाजी महाराजका शिष्य हूँ।" यह सुनकर श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले, "आप बहुत सौभाग्यशाली हैं कि आपको प्रेमदास बाबाजी महाराज जैसे श्रेष्ठ गुरु प्राप्त हुए हैं।"

गुरुतत्त्व एवं उन्नत कोटिके महाभागवत भक्तके दर्शनकी आवश्यकता

श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारीने आगे कहा—

किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय।
जेइ कृष्ण-तत्त्व-वेत्ता सेई 'गुरु' हय॥

श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्यलीला (८.१२८)

["जो कृष्णके तत्त्वको जानता है, वही गुरु है, भले ही वह जन्मसे (जातिसे) ब्राह्मण हो या शूद्र, अथवा आश्रमसे संन्यासी (या ब्रह्मचारी) ही क्यों न हो।"]

गुरु कौन हैं? जो कृष्ण-तत्त्वके ज्ञाता हैं, वही गुरु हैं चाहे वे दीक्षा प्रदान कर रहे हों या नहीं। यदि वे दीक्षा प्रदान कर रहे हैं, अर्थात् शिष्य ग्रहण कर रहे हैं तो यह ठीक है। हो सकता है कि वे दीक्षा नहीं दे रहे हों, केवल शिक्षा ही दे रहे हों। भले ही बाहरी रूपसे वे शिक्षा भी न दे रहें हो, तब भी उनके आचरणसे ही हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

आप सभीको एक उन्नत कोटिके महाभागवत भक्तके दर्शन अवश्य करने चाहिएँ। भले ही वे अपने मुखसे कुछ न बोल रहें हों, लेकिन उनके शरीरसे एक दिव्य सुखमय और मङ्गलमय भाव निकलता है, जैसे सूर्यसे किरणें निकलती हैं। आप जानते हैं कि यदि आपके समीप कहीं कोई सुगन्धित पुष्प रखा हो अथवा अगरबत्ती रखी हो तो उसकी सुगन्ध आपको अवश्य आएगी। इसी प्रकार यदि आप एक उच्च कोटिके भक्तके पास जाते हैं, और वे मुखसे कुछ भी नहीं कहते, तब भी उनके दिव्य शरीरसे निकलने वाली कुछ किरणें, कुछ सुगन्ध, कुछ शक्ति आपके हृदयको स्पर्श करेगी। भले ही आप उसे देख नहीं पायें अथवा उसे अनुभव कर पायें या नहीं, लेकिन वे आप पर अवश्य अपना प्रभाव डालती हैं। ऐसे भक्तोंका दर्शन मात्र ही आपको पवित्र कर देता है।

अग्नि स्वयं कभी कुछ नहीं कहती, परन्तु उसका प्रकाश और ताप स्वतः ही अनुभव होता है। वैष्णव उससे कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं; वे अपनी शक्तिसे पूरे विश्वको नियन्त्रित कर सकते हैं। आप जानते हैं कि किस प्रकार प्रभुपाद श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके पाश्चात्य देशोंमें आने मात्रसे अतिशीघ्र ही उनकी गुण-महिमाकी दिव्य सुगन्ध सर्वत्र प्रसारित हो गयी और कुछ ही वर्षोंमें उन्होंने यहाँके निवासियोंके जीवनमें कितना परिवर्तन ला दिया। उन्होंने चमत्कार कर दिया।

यहाँ श्रीप्रद्युम्न ब्रह्मचारी कह रहे हैं, "किबा विप्र, किबा न्यासी, शूद्र केने नय—चाहे कोई वर्णगत जातिसे ब्राह्मण हो, शूद्र हो या संन्यासी हो।" भले ही उनका जन्म निम्न-कुलमें हुआ हो, इससे कोई हानि नहीं है। यदि वे कृष्ण-तत्त्व, माया-तत्त्व, जीव-तत्त्व, प्रेम-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व आदिके विषयमें जानते हैं, तो वह गुरु हैं। दूसरी ओर, एक बहुत ही उच्च-कुलमें जन्मे विद्वान व्यक्ति जिन्हें संस्कृत, वेद, उपनिषद् और ब्रह्म-सूत्र आदि सभीका ज्ञान है, जिन्होंने सब कुछ मुखस्थ कर लिया है और उनका उच्चारण भी कर सकते हैं, परन्तु उन्हें कृष्ण-तत्त्वके विषयमें कोई अनुभूति नहीं है, तो वे गुरु नहीं हैं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस विषयमें कुछ कहा है जो मैं आप लोगोंको बताना चाहता हूँ। शिष्यको ऐसे गुरुके पास जाना चाहिए जो कृष्ण-तत्त्वमें सुप्रतिष्ठित हों, जिन्हें कृष्णकी अनुभूति हो, जो सदा शुद्धरूपसे हरिनाम करते हों, जो सांसारिक भोग-विलास एवं इन्द्रिय-तृप्तिकी कामनासे पूर्णतः विरक्त हों और जिनकी आसक्ति केवल मात्र कृष्णमें हो।

प्रारम्भिक अवस्थामें एक व्यक्तिमें साधु एवं भगवान्के प्रति कुछ परिमाणमें श्रद्धाका होना आवश्यक है। पूर्ण [पारमार्थिक] श्रद्धा उस अवस्थामें प्रकटित नहीं होगी। किसी साधुके मुखसे हरिकथाके श्रवणके द्वारा जीवके हृदयमें [पारमार्थिक] श्रद्धाका एक छोटा-सा अंश उदित होता है। उसके पश्चात् व्यक्तिको प्रामाणिक गुरुके चरणकमलोंमें शरण ग्रहण करनी चाहिए और फिर उनसे शिक्षा एवं दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कह रहे हैं कि गुरु दो प्रकारके होते हैं—दीक्षा-गुरु और शिक्षा-गुरु। हमें दीक्षा-गुरुसे दीक्षा प्राप्त करनी चाहिए और सर्वप्रथम भगवान्के श्रीविग्रहका अर्चन करना आरम्भ करना चाहिए। भगवान्के लिये रसोई बनाना भी अर्चनके अन्तर्गत है। यदि आप पवित्र अवस्थामें नहीं हैं [जैसे यदि हाथ झूठे हैं अथवा वस्त्र अपवित्र हैं अथवा स्त्री भक्त मासिक-धर्म रजस्वला आदि की अवस्थामें हैं], तो आप अर्चनसे सम्बन्धित कोई भी सेवा नहीं कर सकते। इसलिए पहले पवित्र रहनेका अभ्यास करना चाहिए। विशेषकर आपका हृदय शुद्ध होना चाहिए। यदि आपका हृदय भौतिक वासनाओं, विशेषकर काम एवं क्रोधसे कलुषित है तो आप अर्चन करनेके योग्य नहीं हैं, रसोई बनानेके योग्य नहीं हैं, अपने गुरुदेवकी सेवा करनेके योग्य नहीं हैं, यहाँ तक कि

गुरुदेवके चरण स्पर्श करनेके भी योग्य नहीं हैं। पहले कृष्णभक्ति [की विधिके श्रवण एवं पालन] के द्वारा शुद्ध बननेका प्रयास करो और तब आप इन सेवाओंको कर सकते हो। अन्यथा, आप गुरुमें और यहाँ तक कि कृष्णमें भी दोष देखोगे। जैसे दुर्योधन स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी क्रियाओंमें बहुत सारे दोष देखता था। इसलिए हमें अपने जीवनमें पहले एक स्तर तक पवित्रता धारण करनी होगी।

दीक्षा-गुरु एक ही होते हैं, शिक्षा-गुरु एकसे अधिक हो सकते हैं। परन्तु शिक्षा-गुरु और दीक्षा-गुरु, दोनों ही अनुभूति सम्पन्न कृष्णतत्त्वविद् होने चाहिएँ।[२]

किन परिस्थितियोंमें दीक्षा-गुरु परित्यज्य

जैवधर्ममें विजय कुमार एक प्रश्न पूछ रहे हैं, "दीक्षा-गुरुका त्याग नहीं किया जा सकता, क्योंकि शास्त्रोंमें कहा गया है कि दीक्षा-गुरुको बदलना अथवा त्यागना नहीं चाहिए। परन्तु यदि हमने किसी ऐसे गुरुसे दीक्षा प्राप्त की है जो हमें कृष्ण-तत्त्व अथवा कृष्ण-भक्तिकी शिक्षा देनेके योग्य नहीं है, तो ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिए? यदि वह गुरु हमारी पारमार्थिक सहायता नहीं कर सकते तो हमारा क्या कर्त्तव्य है?

श्रीरघुनाथदास बाबाजी महाराज कह रहे हैं, "किसी व्यक्तिको गुरुके रूपमें वरण करनेसे पहले उस व्यक्तिकी परीक्षा करनी चाहिए—क्या वे मुझे कृष्ण-भक्ति दे सकते हैं या नहीं? उनका भविष्यमें भक्ति-पथसे पतन तो नहीं होगा? क्या वे स्वयं भक्तियोगका पालन कर रहे हैं या नहीं? क्या वे अपने गुरुदेवका अनुसरण कर रहे हैं या नहीं? क्या वे एक लाख हरिनाम जप प्रतिदिन कर रहे हैं या नहीं? क्या वे भगवान्का अर्चन कर रहे हैं? और क्या श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित 'गुर्वाष्टकम्' में वर्णित गुरुके समस्त लक्षण उनमें हैं या नहीं, जैसे 'साक्षात्-हरित्वेन' अर्थात् श्रीहरिके समस्त गुण उनमें हैं या नहीं?

दीक्षा लेते समय यदि शिष्यने गुरुकी परीक्षा नहीं की और अज्ञानतावश भावुकतामें आकर दीक्षा प्राप्त कर ली और फिर कुछ समय पश्चात् उसे यह अनुभव हुआ कि यह गुरु मुझे भक्ति सम्बन्धित अनुभूतियाँ नहीं दे सकते, अथवा वे कृष्णभावना-भावित बननेमें मेरी सहायता करनेमें अक्षम हैं, ऐसी स्थितिमें उस शिष्यको क्या करना चाहिए?

हम दो परिस्थितियोंमें ऐसे गुरुको बदल सकते हैं अथवा त्याग सकते हैं। प्रथम परिस्थिति यह है कि यदि गुरु चयन करते समय और दीक्षा लेते समय शिष्यने पूर्वोक्त सभी तथ्योंकी ठीक रूपसे परीक्षा नहीं की और भावुक होकर उसने अति शीघ्र दीक्षा ग्रहण कर ली, परन्तु कुछ समयके उपरान्त उसने जब वरिष्ठ भक्तोंके मुखसे तथा श्रीमद्भागवतम् एवं अन्य शास्त्रोंसे गुरुके वास्तविक लक्षणोंके विषयमें श्रवण किया और यदि उसे यह लगने लगा कि, "मेरे यह गुरु मेरी कोई सहायता नहीं कर सकते। मुझे दीक्षा प्राप्त किये हुए पन्द्रह-सोलह वर्ष हो गये हैं, परन्तु भक्तिमें मेरी कुछ भी उन्नति नहीं हुई।" यदि शिष्य यह देखता है कि उसके गुरुदेव शुद्ध-वैष्णव नहीं हैं, वे अपने गुरुदेवकी सेवा नहीं कर रहे हैं, वे अपने गुरुदेवकी आज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं, यहाँ तक कि वे हरिनामका जप भी नहीं कर रहे हैं, तो उसे ऐसे गुरुको त्याग देना चाहिए।

मैं बहुतसे गुरुओंको जानता हूँ जो कभी हरिनाम जप नहीं करते, कभी नहीं। वे केवल उपदेश देते हैं—"तुम्हें हरिनाम करना चाहिए, तुम्हें हरिनाम करना चाहिए।" लेकिन वे स्वयं कभी हरिनाम जप नहीं करते। उनके पास हरिनाम करनेका समय नहीं है। वे क्या कर रहे हैं? वे सर्वदा फोन पर अथवा यहाँ-वहाँ, प्रबन्धन कार्यमें व्यस्त रहते हैं, सब समय बैठकें (meetings) करते हैं, परन्तु तब भी समस्याओंका कोई सुनिश्चित समाधान नहीं होता। सब समय वे इन्हीं कार्योंमें व्यस्त रहते हैं।

इसलिए यदि शिष्यको अनुभव सहित यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि उसके गुरु उसकी पारमार्थिक सहायता नहीं कर सकते हैं, तो ऐसे गुरुको त्याग

---

२ श्रील गुरुदेव द्वारा बतलाये जा रहे विषयको विस्तारसे पाठ करने हेतु गौड़ीय वेदान्त प्रकाशनसे प्रकाशित 'जैवधर्म' नामक ग्रन्थका २०वाँ अध्याय द्रष्टव्य है।

देना चाहिए। शास्त्रोंमें ऐसा ही निर्देश दिया गया है और श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इस सन्दर्भमें प्रमाण-स्वरूप अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं।

दूसरी परिस्थिति यह है कि दीक्षा लेनेके समय गुरुदेव, जिनसे शिष्यने दीक्षा ली थी, एक मध्यम अधिकारी वैष्णव थे, वे वास्तवमें वैष्णव-परम्पराका निष्ठापूर्वक पालन कर रहे थे और वे भक्ति सम्बन्धित सभी तत्त्वों जैसे कृष्ण-तत्त्व, माया-तत्त्व इत्यादिको जानते थे, परन्तु कुछ समयके पश्चात् वे कुछ मायावादियों, सहजिया व्यक्तियों अथवा अन्य किसी अपसम्प्रदायके अनुयायियोंके सङ्गमें आ गये। उसके प्रभावसे अब वे हरिनाम नहीं कर रहे हैं और साथ ही वैष्णवोंकी निन्दा करने लगे हैं और यहाँ तक कि वैष्णव गुरु-परम्पराको भी स्वीकार नहीं कर रहे हैं। तब ऐसी स्थितिमें शिष्यको क्या करना चाहिए? शिष्यको ऐसे गुरुको तुरन्त मलवत् त्याग कर देना चाहिए। जब व्यक्ति मल त्याग करता है, तो उसका चित्त प्रसन्न होता है और वह सुखका अनुभव करता है। इसलिए ऐसे 'kan-guru'[३] (कङ्गारु) कपटी गुरुको त्यागकर शिष्य आनन्दित ही होगा।

परन्तु यदि गुरु शास्त्रोक्त विधियोंका पालन कर रहे हैं, वह अपने गुरुदेवकी परम्परामें भी हैं, हरिनाम और भगवत्-स्मरण भी कर रहे हैं, परन्तु इतने विद्वान नहीं है कि वह अपने शिष्यको कृष्ण-तत्त्वमें प्रतिष्ठित कर सकें, तो उस स्थितिमें ऐसे गुरुको त्यागना नहीं चाहिए। अपितु उनके प्रति विशेष आदर रखते हुए शिष्यको उनकी अनुमति प्राप्तकर एक उच्च-कोटिके वैष्णवका सङ्ग करना चाहिए। वे अवश्य ही शिष्यको श्रेष्ठ वैष्णवके सङ्गका लाभ उठानेकी अनुमति देंगे। यदि वह इसकी अनुमति नहीं दे रहे है, तो शिष्यको यह समझ जाना चाहिए कि वे भी 'kan-guru' असद्गुरुमें से ही एक हैं और उन्हें त्याग देना चाहिए। यही ठीक है।

३ ऑस्ट्रेलियामें होनेके कारण श्रील गुरुदेव व्यंग्यात्मक रूपसे कपटी गुरुको 'कङ्गारु' कह रहे हैं।

जिन विचारोंको हमारे लिए जानना आवश्यक है, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उन सभी विषयोंको 'जैवधर्म' में वर्णन किया है। मैं आप सभीसे अनुरोध करता हूँ कि इस ग्रन्थका एक बार अवश्य अध्ययन करें।

श्रीमद्भगवद्गीताके "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा" श्लोकका वास्तव अर्थ

संन्यासी ठाकुरका व्यक्तित्व बहुत उन्नत था। वे ब्रह्म-तत्त्वमें प्रतिष्ठित थे अर्थात् वे भली-भाँति जानते थे कि क्या चिद् है और क्या जड़ है। यही ब्रह्म-निष्ठा है। भगवद्गीतामें कहा गया है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

श्रीमद्भगवद्गीता (१८.५४)

[ब्रह्ममें अवस्थित प्रसन्नचित्त व्यक्ति न तो शोक करते हैं और न ही आकांक्षा करते हैं। वे सभी प्राणियोंमें समदर्शी होकर प्रेमलक्षणयुक्त मेरी भक्ति प्राप्त करते हैं।]

[श्रील गुरुदेवने किसी एक भक्तसे पूछा—] क्या आप "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा"का अर्थ समझा सकते हैं?

[भक्त—] एक उन्नत स्तरपर पहुँचनेके पश्चात् व्यक्ति अतिशीघ्र ही प्रसन्नात्मा अथवा पूर्णतः चिन्मय हो जाता है। वह न तो शोक करता है, न ही किसी जागतिक वस्तुकी कामना करता है। वह सभी जीवोंके प्रति सम-भाव रखता है। चेतनाकी ऐसी अवस्थामें, वह एक सिद्ध पुरुष बन जाता है। वह अपनी उन्नत चेतनाके स्तरसे सभी जीवोंका समान भावसे दर्शन करता है और इसलिए वह सभी प्राणियोंको आत्माके रूपमें देख पाता है। वह संसारकी किसी भी वस्तुसे, यथा—दुःख-सुख, सर्दी-गर्मी आदिसे प्रभावित नहीं होता है। उसका जीवन पारमार्थिक जगत्की क्रियाओंसे सम्बन्धित होता है।

[श्रील गुरुदेव, एक अन्य भक्त से—] आप इस विषयमें और कुछ बता सकते हैं?

[अन्य भक्त—] इस श्लोकके द्वारा श्रीकृष्ण हमें बतला रहे हैं कि जिस व्यक्तिने ब्रह्मभूत प्रसन्नात्माकी अवस्थाको प्राप्त कर लिया है, वह व्यक्ति वास्तवमें परा-भक्तिको प्राप्त करने अथवा उसमें प्रवेश करनेका उपयुक्त पात्र बन गया है—"मद्-भक्तिं लभते पराम्।" परन्तु यह परा-भक्ति कैसे प्राप्त होगी? वह कौन-सी पद्धति है जिसके द्वारा उस व्यक्तिको परा-भक्तिके राज्यमें प्रवेश करनेका सुअवसर प्राप्त होगा? यह सौभाग्य केवल अत्यधिक उन्नत एवं प्रामाणिक वैष्णवोंके सङ्गसे ही प्राप्त हो सकता है। शुद्ध-वैष्णवोंके सङ्गका अभाव होनेपर यह सम्भव है कि व्यक्ति निर्विशेषवादी विचारोंसे आकर्षित हो जाए अथवा पूर्ण रूपमें भक्तिसे विपरीत दिशामें चला जाए। अतः यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि ऐसे समयपर वह प्रामाणिक साधुओंका सङ्ग प्राप्त करे।

[श्रील गुरुदेव—] 'न शोचति' का क्या अर्थ है? जीवनमें भारी विपदा आनेपर अथवा अपना पद, अपनी सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, सब कुछ नष्ट हो जानेपर भी वह व्यक्ति शोक नहीं करता। यहाँ तक कि उसका संसार नष्ट हो जानेपर, स्वजनों द्वारा अपने ही घरसे निष्कासित कर दिये जानेपर भी वह प्रसन्न होकर यही सोचता है—"अब मैं ठीक हूँ।" यदि उसकी पत्नी उसे त्याग देती है, तो वह प्रसन्न-चित्त होकर कहता है—"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। मैं तो पहलेसे यही चाहता था। उसने अच्छा ही किया, मुझे त्याग दिया।" किसी भी स्थितिमें, किसी भी अवस्थामें वह दुखी नहीं होता।

उन्नत कोटिके वैष्णवोंका सङ्ग करनेकी आकांक्षा एवं उसका फल

'न काङ्क्षति'—ऐसे व्यक्तिको कभी कोई जागतिक वस्तु नहीं चाहिए; उसमें सांसारिक अभिलाषा ही नहीं रहती। उसके हृदयमें यही प्रबल आकांक्षा विराजित रहती है कि वह सदैव उन्नत कोटिके वैष्णवोंका सङ्ग करे, उनकी सेवा करे और विशेष रूपसे उनके मुख-कमलसे निकलनेवाली हरिकथाको श्रवण करे।

तस्मिन् महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति।
ता ये पिबन्त्यविततृषो नृप गाढ़कर्णै-स्तान्न
स्पृशन्त्यशन-तृड्-भय-शोक-मोहाः॥

(श्रीमद्भागवतम् ४/२९/४०)

जिस स्थानपर भागवत-जन निवास करते हैं, उस स्थानपर उन महापुरुषोंके मुखकमलसे प्रवाहित होनेवाली भगवान् मधुरिपु श्रीकृष्णके चरितामृतकी धारावाहिनी सरिताएँ चारों दिशाओंमें प्रवाहित होती हैं। जो अतृप्त और अभिनिविष्ट कर्णकुहरोंके द्वारा उन अमृतवहनकारी धाराओंका पान करते हैं, उन्हें भूख, प्यास, भय, शोक और मोह आदि स्पर्श भी नहीं कर सकते।

[अर्थात् उन्नत भक्तोंके मुखारविन्दसे निरन्तर अमृतकी धारा प्रवाहित होती है। उस धाराका कभी अन्त नहीं होता, वह कभी समाप्त नहीं होती। अपितु वह अमृत प्रतिक्षण वर्धित होता रहता है और यदि कोई उस अमृतमें स्नान कर ले, तो वह पवित्र हो जाता है। उसके जीवनके सभी प्रकारके दुःख, कष्ट, कठिनाइयाँ, समस्याएँ सदा-सर्वदाके लिए दूर हो जाती हैं और फिर वह इस स्थितिको प्राप्त करता है। कौन सी स्थिति? 'न शोचति न काङ्क्षति समः सर्वेषु भूतेषु'—और उसके पश्चात् वह शुद्ध-भक्ति, प्रेम-भक्तिके राज्यमें प्रवेश कर जाता है।]

संन्यासी ठाकुर पारमार्थिक यात्राके प्रथम चरणको पार कर चुके हैं। प्रथम चरण क्या है? 'न शोचति न काङ्क्षति समः सर्वेषु भूतेषु' की स्थितिको प्राप्त करना। पूर्वमें संन्यासी ठाकुर उपरोक्त श्लोकमें वर्णित 'समः सर्वेषु भूतेषु' का मायावाद संयुक्त अर्थ हृदयमें धारण करते थे, किन्तु अब श्रीप्रेमदास बाबाजी महाराजके सङ्गके फलस्वरूप इस श्लोकका यथार्थ अर्थ उनके अनुभवमें आ गया है। अब तो उनके हृदयमें यह भावना उदित होती है कि कृष्ण-प्रेम प्राप्ति और कृष्णकी लीलाओंमें प्रवेश करना ही हमारा परम लक्ष्य है। अब संन्यासी ठाकुर केवल यह जानना चाहते हैं कि "कृष्ण कौन हैं? वे वृन्दावनमें कैसी लीलाएँ करते

हैं? उनकी रूप मधुरिमा कैसी है? कैसा उनका सौन्दर्य है जिससे सभी उनसे आकर्षित हो जाते हैं?" तो अब इन सब विषयोंको जानने और समझनेमें उनकी पूर्ण निष्ठा उत्पन्न हो गयी है। यह किस प्रकार सम्भव हुआ? एक उच्च कोटिके वैष्णवके सङ्गके कारण।

यदि कोई व्यक्ति सदैव उच्च कोटिके वैष्णवका सङ्ग करता है, तो निश्चित रूपसे ऐसा होगा। क्या उसकी कभी अधोगति हो सकती है? विवाह करनेकी कामना क्या उसके मनमें आ सकती है? अथवा काम वासना उसे उद्वेग दे सकती है? कदापि नहीं। यदि ऐसी कामनाएँ उसके हृदयमें आ रही हैं, तो इसका अर्थ है कि वह उन वैष्णवके चरणोंमे कुछ अपराध कर रहा है। इस प्रकार वह एक उन्नत वैष्णवके निकट वास करते हुए भी वास्तवमें उनका सङ्ग नहीं कर रहा है। अन्यथा ऐसे गुरुके माध्यमसे उस शिष्यके जीवनमें कुछ पारमार्थिक उन्नति अवश्य ही होनी चाहिये।

संन्यासी ठाकुरके दृष्टान्तसे हम देख सकते हैं कि उनके गुरु प्रेमदास बाबाजी महाराज चिद्-बलसे सम्पन्न हैं। अतः अब संन्यासी ठाकुरके हृदयमें कृष्ण-सेवाकी वासना उदित हो रही है, क्योंकि उन्होंने वास्तवमें अपने गुरुदेवका सङ्ग किया है।

हरिनाम करते समय लीलाओंका स्मरण करना एवं सिद्ध स्वरूपका परिचय प्राप्त करनेकी प्रामाणिक पद्धति

एक दिन ब्रह्म-मुहूर्तके समय, माने सूर्योदयसे एक घण्टा छत्तीस मिनट पूर्व, प्रेमदास बाबाजी महाराज तुलसीके पौधेके निकट बैठे थे। इस समयको अरुणोदय कहा जाता है। अभी सूर्योदय नहीं हुआ है, परन्तु अन्धकार जानेवाला है। बाबाजी महाराज वहाँ कुश घाससे बने आसन अथवा केलेके वृक्षकी छालसे बने वल्कल-आसनपर बैठकर हरिनाम कर रहे थे।

वे प्रतिदिन कितना हरिनाम करते थे? दो लाख। प्रातः कालसे ही वह नाम जपना आरम्भ कर देते थे। हरिनाम स्नान करनेके पश्चात् अथवा बिना स्नान किये भी किया जा सकता है। इसमें कोई असुविधा नहीं है। हरिनाम शय्यापर बैठकर या कहीं पर टहलते हुए भी किया जा सकता है, परन्तु एक स्थानपर बैठकर करना ही श्रेष्ठ विधि है। आपको पवित्र मनसे, एकाग्रचित्त होकर हरे कृष्ण महामन्त्रका जप करना चाहिए। हरिनाम करते समय क्या करना चाहिए? गौराङ्ग-चन्द्र और कृष्ण-चन्द्र, दोनोंकी लीलाओंका स्मरण करना चाहिए।

बाबाजी महाराज हरिनाम करते हुए क्या चिन्तन कर रहे थे? प्रातः काल सूर्योदयसे पूर्वका समय था और राधा-कृष्ण सङ्केत नामक लीला-स्थलीके किसी कुञ्जमें अनेक गोपियोंके साथ विराजित थे। सभी सखियाँ उनकी सेवा कर रही थीं। बाबाजी प्रातः कालकी उन अत्यन्त मधुर लीलाओंका स्मरण कर रहे थे। वे अपने ध्यानमें दर्शन कर रहे थे कि सभी गोपियाँ राधा-कृष्णकी अनेक प्रकारसे सेवाएँ कर रही हैं। उस समय श्रीराधिकाकी एक वृद्ध बन्दरीने देखा कि सूर्योदय होनेवाला है और जटिला आ रही है, इसलिए अब राधा और कृष्णको अपने-अपने घर चले जाना चाहिए। इसलिए वह बन्दरी तुरन्त जोरसे चिल्लाने लगी, "जटिला! जटिला आ रही है! हे राधे, तुम बहुत धूर्त हो। इसलिए जटिला तुम्हें कुछ पुरस्कार देने आ रही है। थोड़ा ठहरो, वह बस यहाँ आने ही वाली है। वह बाँसकी छड़ी लेकर आ रही है। तुम दोनों यहीं बैठे रहो! और वह तुम दोनोंको दण्ड देगी।" यह सुनकर सभी बहुत उदास-से हो गये। उन्होंने कहा, "जटिला आ रही है? तो हमें अब अतिशीघ्र ही यहाँ-से जाना चाहिए!"

उस समय बाबाजी महाराजने ध्यानकी अवस्थामें ही एक बन्दरीकी ध्वनि सुनी, यद्यपि बाह्यतः वहाँ आस-पास कोई बन्दरी नहीं थी। परन्तु बाबाजी महाराजको ध्वनि सुनाई दी और वे बोले, "सखि! इस कक्खटी (श्रीमती राधिकाकी बन्दरीका नाम) को शीघ्र चुप कराओ, नहीं तो मेरे राधा-गोविन्दकी सुख-निद्रा उचट जानेसे सखी ललिता दुःख पायेंगी

और मेरी भर्त्सना करेंगी। अरी देखो, अनङ्गमञ्जरी इसके लिए इङ्गित कर रही हैं। हे रमण मञ्जरी, तुम अभी जाकर उस बन्दरीको चुप कराओ।"[४]

श्रीप्रेमदास बाबाजी महाराज यह किसीसे नहीं कह रह थे, परन्तु संन्यासी ठाकुर वहाँ उपस्थित थे और वे ये सब बातें सुन रहे थे और उसके मर्मार्थको जाननेके लिए उत्सुक थे। इसलिए जब बाबाजी महाराजने नेत्र बन्द की हुई अवस्थामें कहा—"रमण मञ्जरी! तुम्हें जाकर इस बन्दरीसे कहना चाहिए कि वह चुप हो जाए।" यह कहते-कहते प्रेमदास बाबाजी अचेतन हो गये और भावावेशमें भूमि पर लोट-पोट करने लगे। तब संन्यासी ठाकुर समझ गये कि, "मेरे गुरुदेव मेरा सिद्ध-परिचय देते हुए मुझसे कह रहे हैं कि, मेरी सिद्ध-देहका नाम 'रमण मञ्जरी' है और मेरी सेवा श्रीराधा-कृष्णकी सुख-निद्राको भङ्ग होनेसे बचाना है और यह सुनिश्चित करना है कि कोई युगल किशोरको उद्वेग न दे। मुझे पंखे द्वारा, चामर ढुलाकर अथवा अन्य समस्त चेष्टाओं द्वारा उनकी सेवा करनी है।" इस प्रकार अब संन्यासी ठाकुरको अपना सिद्ध परिचय प्राप्त हो गया था।

यही सिद्ध स्वरूपका परिचय प्राप्त करनेकी प्रामाणिक पद्धति है। सहजिया व्यक्तियोंका अनुकरण मत करो। जब तक अधिकार उन्नत नहीं हुआ हो, हृदयमें काम-क्रोध तथा अनेक सांसारिक वासनाएँ, इन्द्रिय-तृप्तिकी कामनाएँ विद्यमान हों, तब तक तुम बलपूर्वक अपने 'कल्पित' सिद्ध-देहका ध्यान अथवा इन लीलाओंकी कल्पना कदापि मत करना! हरिनाम करो और अपने गुरुदेवकी धैर्यपूर्वक विश्रम्भ-सेवा करो, और जब तुम निरन्तर सेवामें नियुक्त रहोगे, तब तुम्हारी योग्यता देखकर गुरुदेव स्वयं ही तुम्हें इन सब गूढ़ विषयोंको बतलायेंगे। परन्तु यदि तुम अभी अधिकारी नहीं हो और बलपूर्वक सिद्ध-देहकी कल्पना करोगे, तो तुम अपना सर्वनाश ही कर बैठोगे।

* * *

अब, जब बाहर, गोद्रुममें कोयल गान करने लगीं, मोर नृत्य करने लगे और सूर्य उदित होने लगा, तब संन्यासी ठाकुरने कुछ उच्च स्वरसे "हरे कृष्ण हरे कृष्ण" का जप करना आरम्भ कर दिया। उनके शब्द प्रेमदास बाबाजीके कानोंमें पड़े। उन्हें अब बाह्य स्फूर्ति हुई। उन्होंने अपने नेत्र खोले, और कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा "मैं कहाँ हूँ? मैं क्या कर रहा हूँ?"

अब प्रेमदास बाबाजी उन्हीं सब लीलाओंका स्मरण करते हुए पुनः हरे कृष्ण महामन्त्रका जप करने लगे। यही वास्तविक भजनकी अवस्था है।

---

[४] श्रीभजन-रहस्य १.३८ में उद्धृत गोविन्द लीलामृत (१.१०)

रात्र्यन्ते त्रस्त-वृन्देरितबहुविरवैर्बोधितौ कीरशारी-
पद्यैर्हद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तै सखीभिः।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदितरतिललितौ कक्खटीगीः सशंकौ राधाकृष्णौ
सतृष्णावपि निज-निज धाम्न्याप्त तल्पौ स्मरामि॥

रात्रिका अन्त हो रहा है और अब दिन निकलनेवाला है—इससे शङ्कायुक्त होकर वृन्दादेवी श्रीराधाकृष्णको जगानेके लिए शुक-सारिकादि पक्षियों द्वारा कलरव कराती हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु धीरे-धीरे बह रही है। मयूर-मयूरी, शुक-सारी, पपीहा कुहु-कुहू, पिउ-पिउ आदि कल-ध्वनियोंमें श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका गुणानुवाद करते हुए मानो कह रहे हैं—हे ब्रजराजनन्दन! हे निकुञ्जेश्वरी! हमें आपके दर्शन कब होंगे? पक्षियोंका कलरव सुनकर युगलकिशोरके जाग्रत हो जानेपर भी परस्पर बिछुड़नेके भयसे सुरत रङ्गमें अलसाये हुए वे पुनः एक दूसरेसे आलिङ्गन-बद्ध होकर सो जते हैं। वृन्दाजी उन्हें उठानेकी जितनी चेष्टा करती हैं, वे उतना ही अलसाये हुए गाढ़ निद्राको प्रदर्शित करते हैं, एक दूसरेको छोड़ना नहीं चाहते। उसी समय कक्खटी नामक बन्दरी 'जटिला! जटिला!' कहकर चीत्कार करती है। यह सुनकर शङ्कित हो दोनों जग जाते हैं। (यहाँ जटिलाका तात्पर्य है, प्रातःकाल हो गया, सूर्यकी किरणरूपी जटा निकलने वाली है, साथ-ही-साथ जटिला आ रही है—इसका भी बोध होता है।) नित्य तथा प्राण सखियाँ कुञ्जमें प्रवेश करती हैं। मञ्जरी सखियाँ दोनोंके रतिचिह्न, वस्त्र भूषण, अलङ्कारोंको यथाव्यवस्थित सुसज्जितकर प्रिय एवं प्रियनर्म सखियोंको बुलाती हैं। किशोर-किशोरीजी आपसमें हास-परिहास करते हैं। श्रीललिताजी दोनोंकी आरती करती हैं। तत्पश्चात् दोनों अपने-अपने भवनोंमें पधारते हैं।

उन्नत पारमार्थिक अवस्थाको लक्ष्य करते हुए भजन करनेकी आवश्यकता

हमें इन सभी विषयोंको समझनेका प्रयास करना चाहिए और तदनुसार उस उन्नत अवस्थाको लक्ष्य करते हुए भजन करना चाहिए। धन इकट्ठा करने, कोई उच्च पद प्राप्त करने, प्रेमिका या प्रेमी ढूँढ़नेके लिए मत जाओ। ये सब क्रियाएँ हमने पूर्व जन्मोंमें, सुअर और कुत्तेकी योनियाँ प्राप्तकर अनेक बार की हुई हैं। पशु-योनिमें तो हम मनुष्योंसे अधिक भोग कर सकते हैं, तो अब यह मनुष्य देह प्राप्त करके पुनः उन्हीं क्रियाओंमें लिप्त होने की क्या आवश्यकता है? यदि आप विवाहित हो तो कोई बात नहीं, अपनी पत्नीके साथ एक ब्रह्मचारीकी तरह जीवन निर्वाह करो, पति और पत्नी दोनोंको ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणीकी तरह रहना चाहिए और भजन करना चाहिए। यही उत्तम पद्धति है।

सभी जीवोंका नित्यधर्म एक ही है दो नहीं

संन्यासी ठाकुर अपने गुरुदेवसे एक प्रश्न पूछना चाहते थे। उन्होंने पहले गुरुदेवको प्रणाम किया और फिर विनम्रतापूर्वक पूछा, "मेरी एक जिज्ञासा है। यदि आप मुझे योग्य समझें तो कृपया मुझे उत्तर दीजिए। यह पूर्णतया आप पर निर्भर करता है कि आप उत्तर देना चाहते हैं या नहीं।" ऐसा सुनकर उनके गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए।

संन्यासी ठाकुरने उनसे प्रश्न किया—"भगवान् एक हैं। सभी जीव उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। मैं समझता हूँ कि सम्पूर्ण जगत्में एक ही धर्म होना चाहिए, क्योंकि ईश्वर एक है और हम सभी जीव उन्हींसे उत्पन्न हुई आत्माएँ हैं। अतएव आत्माका धर्म भी एक ही होना चाहिए। परन्तु मैं देखता हूँ कि जगत्में जीव जिन-जिन धर्मोंका पालन कर रहे हैं उनमें परस्पर अनेक भिन्नताएँ हैं। धर्मके विषयमें बहुतसे विद्वान जो उपदेश कर रहे हैं, उनमें भी भेद हैं। इसलिए मैं यह जानना चाहता हूँ कि जीवका वास्तविक नित्य धर्म क्या है और जगत्के विभिन्न धर्मगुरु, आचार्य इत्यादि इस नित्यधर्मका भिन्न-भिन्न रूपमें प्रचार क्यों कर रहे हैं। यदि सभी जीवोंका धर्म एक ही है, दूसरा नहीं, तो ये सभी उपदेशक उस एक ही धर्मका उपदेश क्यों नहीं दे रहे हैं? धर्मके विषयमें शङ्कराचार्यका एक विचार है। श्रील व्यासदेवने कुछ अन्य विचार प्रस्तुत किया है। जैमिनी, कपिल आदि षड्-दर्शनके आचार्योंने इसी तरह और भी पृथक्-पृथक् विचार बतलाए हैं। इस भिन्नताका क्या कारण है?"

[श्रील गुरुदेवः] ईसाइयोंके विचार भी पृथक् हैं, हमारे सनातन धर्मावलम्बियोंके पृथक् विचार हैं, इस्लाम धर्म माननेवालोंके विचार भिन्न हैं। तालिबान नामक संगठनके नेता बिन लादेन जैसे दुष्ट मुसलमानोंका विचार है कि जो लोग इस्लाम धर्मको नहीं मानते वे सभी 'काफ़िर' हैं और ऐसे काफ़िरोंकी हत्या कर देनी चाहिए। यह जगत्में अब एक बहुत बड़ी समस्या बन गयी है। वे संसारके समस्त लोगोंको मुसलमान बनाना चाहते हैं।

संन्यासी ठाकुरके इस प्रश्नको सुनकर बाबाजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "आपका प्रश्न बहुत उत्तम है। आप अत्यन्त भाग्यशाली हैं। मैं सर्व-ज्ञाता तो नहीं हूँ, परन्तु जितना मैं जानता हूँ उसके अनुसार मैं आपको उत्तर प्रदान करूँगा।"

एक गुरु यह कभी नहीं कहता कि "मैं सर्व-ज्ञाता अथवा सर्वोत्तम हूँ।" वह कहता है कि एकमात्र परम-पुरुष श्रीकृष्ण ही सर्वोत्तम एवं परिपूर्ण-ज्ञाता हैं। श्रीकृष्णने ये सभी उपदेश श्रीमद्भगवद्गीतामें दिये हैं और यही विश्व-ब्रह्माण्डके जीवोंका एकमात्र वास्तविक नित्य धर्म है। कृष्णने जीव मात्रके धर्मका उपदेश दिया है, उसे "हिन्दु" धर्म, "मुस्लिम" धर्म, "ब्रह्म" धर्म या और कोई अन्य उपाधि नहीं दी है।

[किसी भक्तको सम्बोधित करके श्रील गुरुदेवने पूछा—] क्या आपके पास जैवधर्म नामक ग्रन्थ है? आप इस विषयमें जैवधर्ममें जो लिखा है उसे ही पढ़कर सुनाइये।

[भक्त जैवधर्मके प्रथम अध्यायमें-से पढ़कर सुनाने लगे—] "श्रीकृष्णचैतन्यप्रभुके श्रीचरणकमलोंका ध्यान करके परमहंस बाबाजी कहने लगे—हे सौभाग्यवान्! मैं अपने ज्ञानके अनुसार धर्मका तत्त्व कहता हूँ। जिस वस्तुका जो नित्य स्वभाव है, वही उसका नित्य धर्म है। वस्तुके गठनसे स्वभावका उदय होता है। कृष्णकी इच्छासे जब कोई वस्तु गठित होती है, तब उस गठनके समयसे ही उस वस्तुका नित्य सहचररूप एक स्वभाव भी होता है। वही स्वभाव उस वस्तुका नित्य धर्म है।"

[श्रील गुरुदेवने अन्य एक भक्तसे कहा—] अभी-अभी जो विषय भक्तने जैवधर्म ग्रन्थमें-से पढ़कर सुनाया है, बिना ग्रन्थकी सहायताके आप उस विषयका सार बताइए। खड़े होकर बहुत सरल भाषामें बोलें जिसे सभी समझ सकें।

[भक्त—] प्रेमदास बाबाजी समझा रहे हैं कि धर्म क्या है। नित्य-धर्म किसी भी वस्तुका नित्य स्वभाव है। वस्तु वह है जिसका कोई अस्तित्व है। जिस समय कृष्णकी इच्छासे वस्तु अस्तित्वमें आती है, तब उस वस्तुके गठनका नित्य सहचररूप, उसका स्वभाव भी उसमें निहित होता है। इस स्वभावको उस वस्तुका नित्य-धर्म कहा जाता है। नित्य अथवा वास्तव-वस्तु दो हैं—एक स्वयं भगवान् कृष्ण और दूसरा जीव।

प्रत्येक जड़ वस्तुको अवास्तव-वस्तु या अस्थायी वस्तु कहा जाता है, परन्तु जड़ वस्तुओंका भी अपना एक नित्य स्वभाव होता है और जीवका भी अपना नित्य स्वभाव होता है। जब वह नित्य स्वभाव किसी कृत्रिम परिस्थितिसे ढक जाता है, जैसे हम इस जड़ जगत्में आते हैं, तो कृष्णके दासके रूपमें हमारा नित्य स्वभाव ढक जाता है और हम इस शरीरसे अपनी पहचान बनाने लगते हैं—जैसे कि मैं ऑस्ट्रेलियन हूँ, मैं एक महिला हूँ, मैं एक पुरुष हूँ, या और कुछ। कुछ समयके पश्चात्, हम इस विकृत स्वभावको ही हमारा नित्य स्वभाव मान लेते हैं, परन्तु यह भ्रम है। जैसे तरलता जलकी नित्य प्रकृति है और कुछ विशेष परिस्थितियोंमें, जैसे भीषण गर्मी अथवा भीषण ठण्डमें वह स्वभाव विकृत हो जाता है और वही जल वाष्प अथवा हिम जैसा दिखलाई देता है। वह वस्तुतः जल ही है, किन्तु कुछ समय तक उसको वाष्प अथवा हिमके रूपमें देखने पर हम उसे वैसा ही मान लेते है।

इसी प्रकार, अनादि कालसे इस जड़ जगत्में भ्रमण करनेके कारण, हम अपने आपको उस अनित्य प्रकृतिके रूपमें स्वीकार करते हैं, जबकि वास्तवमें हमारा नित्य-धर्म, नित्य प्रकृति, कृष्णकी सेवा करना है। तो वह धर्म, जो हमें आत्माका उचित दर्शन देता है और हमें सिखलाता है कि हम कृष्णके नित्य दास हैं, वही एक मात्र जीवका धर्म है, सनातन-धर्म है और वह है कृष्णका नित्य दास्य ।

[श्रील गुरुदेव—] धन्यवाद। समझनेका प्रयास करें, जगत्में दो प्रकारकी वस्तुएँ हैं—जड़ और चेतन। एक चेतना-रहित है और एक चेतना-युक्त है। जिसे देखकर हम अपनी बुद्धिसे समझ सकते हैं, जिसे हम स्पर्श कर सकते हैं, जिसे अपने नेत्रोंसे देख सकते हैं, जिसे सुन सकते हैं, वह सब क्या हैं? वे दिव्य नहीं, वे सब जड़ हैं, भौतिक वस्तुएँ हैं। और जो वस्तुएँ इन नेत्रोंके द्वारा नहीं देखी जा सकतीं, परन्तु वे बिना किसी विकारके नित्य कालके लिए विराजित हैं, जिनके पास स्वतन्त्र इच्छा है, स्वतन्त्रता है, वे चेतन वस्तुएँ हैं।

[श्रील गुरुदेवने एक भक्तसे कहा—] मैंने क्या कहा आप उसे समझाइये?

[भक्त—] हाँ, मैं संक्षेपमें ही कुछ कह पाऊँगा। जो कुछ भी आँखों तथा अन्य इन्द्रियों द्वारा देखा जा सकता है, वह वास्तवमें चेतन नहीं है, वह अचेतन है, वह आत्मा नहीं है

[श्रील गुरुदेव—] हम जो देख रहे हैं, जैसे यह शरीर, यह चेतन नहीं है

[भक्त—] वह चेतन नहीं है। हम अपनी इन्द्रियों द्वारा आत्माको नहीं देख सकते। आत्मा हमारी

इन्द्रियोंसे परे है, वह चेतन वस्तु है। हम जो कुछ देख रहे हैं, वह भौतिक रूप है।

[श्रील गुरुदेव—] एक चींटीके उदाहरणसे समझो—चींटी बहुत छोटी है, परन्तु उसमें भी स्वतन्त्र इच्छा है और वह सुख-दुख अनुभव कर सकती है। यह शरीर कभी भी स्वतन्त्र रूपसे कुछ भी अनुभव नहीं करता, परन्तु क्योंकि आत्मा शरीरमें विराजित है, इसी कारण शरीर द्वारा हम कुछ अनुभव कर रहे हैं; हम चल रहे हैं और बहुत-सी क्रियाएँ कर रहे हैं। परन्तु यदि शरीरमें आत्मा नहीं रहे, तो हम कुछ भी अनुभव नहीं कर सकते। इसलिए जहाँ स्वतन्त्र इच्छा है, सुख और दुख या पीड़ाका अनुभव है, वहाँ 'चेतना' है।

चेतन वस्तुएँ दो प्रकारकी हैं—एक आत्मा और एक परमात्मा। आत्मा नित्य सेवक है, वे परमात्माका अंश है, और दूसरी ओर परमात्मा स्वयं भगवान् कृष्ण हैं।

आत्मा और परमात्माके बीच एक सम्बन्ध है, चाहे वह भारतमें हों या अमेरिका या ऑस्ट्रेलिया या अफ्रीका, न्यूजीलैंड, चीन या रूसमें। ईश्वर एक ही है, दो या अधिक नहीं हैं; जैसे कि ऑस्ट्रेलियाई ईश्वर, भारतीय ईश्वर, ईसाई ईश्वर, बुद्ध ईश्वर।

बौद्ध लोग ईश्वरके अथवा आत्माके अस्तित्वमें विश्वास नहीं करते। वे स्वयं कैसे जीवित हैं, वे यह नहीं जानते। वे सब समय व्यस्त रहते है, परन्तु उनकी व्यस्तता किस वस्तुके लिए है?

बौद्ध-धर्मके अनुयायियोंके पास कोई लक्ष्य नहीं है। परन्तु आजकल बौद्ध-धर्मका प्रचार यहाँ-वहाँ सब जगह चल रहा है, क्योंकि सभी इन्द्रिय-तृप्ति करना चाहते हैं। इन्द्रिय-तर्पणमें कोई भी बाधा नहीं देनेके कारण बहुतसे लोग उनके विचारों की सराहना कर रहे हैं और बुद्ध-धर्मकी ओर आकर्षित हो रहे हैं। परन्तु यह मूर्खता है।

भारतीयों, अंग्रेजों, ईसाइयों तथा अन्य किसीके लिए भी कोई पृथक्-पृथक् ईश्वर नहीं हैं। भगवान् एक है तथा सभी प्राणधारी आत्माएँ हैं। मनुष्योंके शरीरमें जो आत्मा है तथा कुत्तों, बिल्लियों, चूहों, चींटियों, यहाँ तक कि घास तथा लताओंमें जो आत्मा है, उनमें कोई अन्तर नहीं है। सभी जीवोंमें एक ही प्रकारकी आत्मा विद्यमान है। अपने पिछले कर्मोंके फलस्वरूप वे विभिन्न योनियोंमें जन्म लेकर अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं। वे भगवान् कृष्णको भूल गये हैं।

भगवद्प्रेम ही सभी जीवोंका नित्यधर्म है

आत्मा परमात्माका ही अंश है। परमात्मा तथा इन आत्माओंके बीचका सम्बन्ध प्रेम कहलाता है। उनके परस्पर सम्बन्धमें केवल प्रेम ही है, अन्य कुछ नहीं। वास्तवमें भगवद्प्रेमको प्राप्त करनेके लिए चेष्टा (साधन) करना ही सभी जीवोंका एकमात्र धर्म है।

हम दुर्लभ मनुष्य जीवनके इस उद्देश्यको भूल गये हैं, इसलिए हम संसारमें कष्ट भोग रहे हैं। हमें तबतक कष्ट भोगना पड़ेगा, जबतक हम इस अवस्थामें रहेंगे। इसलिए अधिक हरिनाम करें, शुद्धभक्तोंका अधिक सङ्ग करनेका प्रयास करें जिससे कि आप इसी जीवनमें सभी भजन-विरोधी वस्तुओंको छोड़ कर सदैव भगवत्-स्मरण करते हुए प्रसन्न रह सकें।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ये सभी विचार बतला रहे हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभु सभीको भगवत्-प्रेम प्रदान करनेके लिए ही आये थे। उन्होंने वृन्दावन जाते समय रास्तेमें इस प्रेमको बाघों और भालुओंको भी दिया। उन्होंने वृक्षों और लताओं, जगाइ और माधाइको भी प्रेम प्रदान किया। इसलिए मैं एकमात्र आपको इस प्रकार प्रसन्न रहने और उसी धर्मका पालन करनेका स्मरण कराने आया हूँ।

गौर प्रेमानन्दे!

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

धारावाहिक

(वर्ष-२०, संख्या—१-४ से आगे)

श्रीराघव पण्डितका दण्ड-महोत्सव स्थानपर आगमन

उसी समय महोत्सवका समाचार पाकर राघव पण्डित भी वहाँपर उपस्थित हुए। वहाँके अद्भुत दृश्यको देखकर वे अति विस्मित हो गये। वे अपने साथ नाना प्रकारका प्रसाद लेकर आये थे। उन्होंने सर्वप्रथम श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रसाद अर्पण किया तथा बचा हुआ प्रसाद अन्य भक्तोंमें बाँट दिया, फिर वे श्रीनित्यानन्द प्रभु कहने लगे—"प्रभो! मैंने आपके लिए अपने घरमें भोग लगाया है, और आप हैं कि यहाँ महोत्सव कर रहे हैं।"

श्रीनित्यानन्द प्रभु हँसते हुए बोले—"राघव! चिन्ता मत करो। वह सारा प्रसाद मैं रात्रिके समय भोजन करूँगा। वास्तवमें मैं गोप जातिका हूँ, इसलिए गोपोंके साथ पुलिन-भोजन करनेमें मुझे अत्यधिक आनन्द होता है।" ऐसा कहकर प्रभुने राघव पण्डितको भी अपने पास ही बैठाकर उन्हें भी दो मिट्टीके पात्र दिलवाये।

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा ध्यानमें श्रीमन्महाप्रभुको वहाँपर लाना

जब सभीको चिड़वा वितरण हो गया, तो श्रीनित्यानन्द प्रभु ध्यानमें श्रीमन्महाप्रभुको वहाँपर ले आये। श्रीमन्महाप्रभुको आया हुआ देखकर नित्यानन्द प्रभु उठ खड़े हुए तथा उन्हें साथ लेकर वे सभीको दिये गये चिड़वेको देखने लगे। श्रीनित्यानन्द प्रभुने प्रत्येक मिट्टीके पात्रसे एक-एक ग्रास चिड़वा परिहास करते हुए महाप्रभुके मुखमें डाल दिया। श्रीमन्महाप्रभुने भी एक अन्य ग्रास लेकर नित्यानन्द प्रभुके मुखमें डाल दिया। इस प्रकार दोनों प्रभु सभी मण्डलियोंमें हास-परिहास करते हुए भ्रमण कर रहे थे। प्रायः सभी लोग वहाँपर केवल नित्यानन्द प्रभुको ही देख रहे थे। किसी सौभाग्यवान व्यक्तिको ही श्रीमन्महाप्रभुका दर्शन हो रहा था।

कुछ समय इसी प्रकारसे भ्रमण करनेके पश्चात् नित्यानन्द प्रभु हँसते हुए आसनपर विराजमान हो गये तथा उन्होंने अपने सामने रखे सात पात्रोंमें-से चार पात्र अपनी दायीं ओर रख दिये तथा आसन देकर वहाँपर श्रीमन्महाप्रभुको बैठाया। तब दोनों भाई चिड़वा खाने लगे। श्रीमन्महाप्रभुको अपने साथ बैठकर खाते हुए देखकर नित्यानन्द प्रभु अत्यन्त आनन्दित थे। जैसे श्रीमन्महाप्रभुने भोजन आरम्भ किया, श्रीनित्यानन्द प्रभुने 'हरि हरि' कहकर सभीको भोजन आरम्भ करनेका आदेश दिया। सभी वैष्णव लोग प्रभुका आदेश पाकर 'हरि-हरि' ध्वनि करते हुए भोजन करने लगे। उस समय सभीको व्रजमें श्रीबलराम एवं श्रीकृष्णका असंख्य सखाओंके साथ पुलिन-भोजनका स्मरण हो आया।

वास्तवमें यह तो रघुनाथ दास गोस्वामीका परम सौभाग्य था कि स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीमन्महाप्रभु उनपर कृपा करनेके लिए ही

उनके द्वारा प्रदत्त चिड़वा ग्रहण कर रहे थे। इस प्रकार श्रीनित्यानन्द प्रभुके प्रभाव एवं उनकी कृपाको कौन समझ सकता है, जिन्होंने रघुनाथ दास गोस्वामीपर कृपा करनेके लिए अपने प्रेमके प्रभावसे श्रीमन्महाप्रभुको वहाँपर लाकर पुलिन-भोजन कराया। श्रीनित्यानन्द प्रभुके परिकर श्रीरामदास आदि गोप इस लीलाको देखकर प्रेमाविष्ट हो गये। वे गङ्गाके तटको यमुना-तट समझने लगे। महोत्सवकी बात सुनकर दूर-दूरसे पंसारी लोग चिड़वा, दूध, दही तथा सन्देश आदि बेचनेके उद्देश्यसे वह सब वहाँपर ले आये। श्रीरघुनाथने उन सबका सारा सामान तो खरीद ही लिया तथा उनको भी वहीं बैठाकर उनके द्वारा लाया गया दही-चिड़वा खिलाया। जितने भी लोग महोत्सवको देखनेके लिए आ रहे थे, श्रीरघुनाथने उन सभी को चिड़वा, दही, सन्देश आदि खिलाया।

भोजन करनेके पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभुने आचमन किया तथा चार मिट्टीके पात्रोंमें बचा हुआ प्रसाद रघुनाथदासको दे दिया। अन्य तीन पात्रोंमें भी दही-चिड़वा बचा हुआ था, जिसे एक ब्राह्मणने सभी भक्तोंमें बाँट दिया। तब एक ब्राह्मणने श्रीनित्यानन्द प्रभुके मस्तकमें चन्दन लगाया तथा उनके गलेमें पुष्पमाला अर्पण की। श्रीनित्यानन्द प्रभुके सेवकने उन्हें ताम्बुल अर्पण किया तथा प्रभु हँसते-हँसते ताम्बुल चर्वण करने लगे। तत्पश्चात् जितना भी माला-चन्दन बचा हुआ था, उसे स्वयं श्रीनित्यानन्द प्रभुने अपने हाथोंसे समस्त भक्तोंमें बाँट दिया। अन्तमें रघुनाथदास श्रीनित्यानन्द प्रभुका उच्छिष्ट पाकर अति आनन्दित हुए तथा उन्होंने वह सारा प्रसाद अपने साथियोंके साथ मिलकर पाया।

श्रीनित्यानन्द प्रभुका राघव पण्डितके घरमें भोजन-ग्रहण

महोत्सव समाप्त होनेके बाद श्रीनित्यानन्द प्रभुने कुछ समय विश्राम किया। जब सन्ध्याका समय हुआ तब श्रीनित्यानन्द प्रभु अपने गणोंके साथ श्रीराघव पण्डितके घर पहुँच गये तथा वहाँपर कीर्तन आरम्भ कर दिया। पहले उन्होंने अपने भक्तोंको नृत्य कराया तत्पश्चात् स्वयं नृत्यकर समस्त जगत्को आनन्द-रसमें निमग्न कर दिया। उनके अद्भुत नृत्यका दर्शन करनेके लिए स्वयं श्रीमन्महाप्रभु वहाँपर उपस्थित हो गये। परन्तु नित्यानन्द प्रभुके अतिरिक्त श्रीमन्महाप्रभुको अन्य कोई नहीं देख पाया। नित्यानन्द प्रभुका नृत्य ऐसा मनमोहक था कि उसकी तुलना त्रिभुवनमें अन्य किसीके नृत्यसे नहीं की जा सकती थी।

नृत्य समाप्त करनेके पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभुने कुछ क्षण विश्राम किया। तत्पश्चात् राघव पण्डितने प्रभुको भोजनके लिए निवेदन किया। प्रभु अपने समस्त भक्तोंके साथ भोजनके लिए बैठ गये तथा उन्होंने अपनी दायीं ओर श्रीमन्महाप्रभुके लिए आसन बिछाया। महाप्रभु आकर उस आसनपर विराजमान हो गये। उस समय परम सौभाग्यशाली राघव पण्डितको भी श्रीमन्महाप्रभुका दर्शन हुआ। श्रीमन्महाप्रभुको श्रीनित्यानन्द प्रभुके निकट आसनपर विराजमान देखकर श्रीराघव पण्डितकी आनन्दकी सीमा न रही। पहले श्रीराघव पण्डितने दोनों भाइयोंके आगे प्रसाद लाकर सजाया, तत्पश्चात् अन्यान्य सभी वैष्णवोंको प्रसाद परोसा। उस प्रसादमें नाना प्रकारके दिव्य एवं स्वादिष्ट व्यञ्जन थे, जो अमृतको भी पराभूत करनेवाले थे। राघव पण्डितके घरका प्रसाद सर्वदा ही अमृतके समान होता था, जिसे पानेके लिए श्रीमन्महाप्रभु पुनः पुनः वहाँ आते थे। रसोई बनानेके बाद जब श्रीराघव पण्डित भोग लगाते थे, तो महाप्रभुके लिए अलगसे भोग लगाते थे तथा महाप्रभु प्रतिदिन वहाँ आकर भोजन करते थे। कभी-कभी वे राघव पण्डितको दर्शन भी देते थे। राघव पण्डित दोनों भाइयोंको आनन्दपूर्वक खिला रहे थे। वे कितने पकवान लाकर परोस रहे थे, इसकी कोई गिनती ही नहीं थी। वास्तवमें राघव पण्डितके घरमें साक्षात् श्रीमती राधिका ही रसोई बनाती थीं। दुर्वासा ऋषिसे श्रीराधिकाको वरदान प्राप्त है कि उनके द्वारा बनाया गया भोजन अमृतसे भी अधिक मधुर होगा। यही कारण था कि राघव पण्डितके

द्वारा परोसा गया प्रसाद सुगन्धित, परम स्वादिष्ट तथा माधुर्यका भी सार–स्वरूप था, जिसे पाकर दोनों भाई अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

सभी भक्तोंने रघुनाथदासको भी प्रसाद पानेके लिए कहा, परन्तु राघव पण्डितने कहा—"रघुनाथ बादमें प्रसाद पायेगा।" इस प्रकार सभी भक्तोंने गले तक भरकर भोजन किया तथा 'हरि, हरि' ध्वनि करते हुए उठकर आचमन किया। भोजनके पश्चात् श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीमन्महाप्रभुने आचमन किया। राघव पण्डितने उन्हें माला–चन्दन एवं ताम्बुल अर्पण किया। उसके बाद सभी भक्तोंको भी माला–चन्दन अर्पण किया।

श्रीनित्यानन्द प्रभु द्वारा स्वयं रघुनाथको आशीर्वाद देना एवं सभी भक्तोंसे भी दिलवाना

राघव पण्डितका रघुनाथदासके प्रति बहुत स्नेह–भाव था। इसलिए उन्होंने दोनों भाइयोंका अवशिष्ट पात्र रघुनाथको दिया तथा बोले—"इन पात्रोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुने भोजन किया है, अतः उनका उच्छिष्ट ग्रहण करनेसे तुम्हारे सारे बन्धन खण्डित हो जायेंगे।" यह सुनकर रघुनाथदासने भावविभोर होकर उस प्रसादको ग्रहण किया। अगले दिन प्रातःकाल श्रीनित्यानन्द प्रभु स्नानादिके पश्चात् गङ्गाके तटपर उसी वृक्षके नीचे बैठे हुए थे। उसी समय श्रीरघुनाथदासने आकर श्रीनित्यानन्द प्रभुको प्रणाम किया एवं श्रीराघव पण्डितके माध्यमसे उनसे निवेदन किया—"प्रभो! मैं अधम, पापी जीव हूँ। मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करूँ। वास्तवमें मेरी यह इच्छा बौना होकर चाँदको पकड़नेकी इच्छा जैसी है। मैंने कई बार प्रयास भी किया, परन्तु सफल नहीं हो पाया। मैंने जितनी बार घरसे भागनेकी चेष्टा की, उतनी ही बार मेरे माता–पिताने मुझ मार्गसे पकड़वाकर घरमें बन्द कर दिया। आपकी कृपाके बिना कोई भी श्रीचैतन्य महाप्रभुको प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मुझ अधमपर भी कृपा कीजिए जिससे मैं सहज ही प्रभुके श्रीचरणकमलोंका आश्रय प्राप्त कर सकूँ। मैं सर्वथा अयोग्य हूँ, इसलिए मैं आपसे निवेदन करनेका साहस भी नहीं कर पा रहा हूँ। अतः स्वयं ही कृपाकर मुझे श्रीमन्महाप्रभुके चरणकमलोंका आश्रय प्रदान कीजिए। आप मेरे सिरपर अपने श्रीचरणकमल रखकर मुझे आशीर्वाद प्रदान कीजिए जिससे मैं निर्विघ्नरूपसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके श्रीचरणकमलोंका आश्रय प्राप्त कर सकूँ।"

यह सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु हँसते हुए भक्तोंसे कहने लगे—"रघुनाथके पास इन्द्रके समान अपार सांसारिक सुख है। परन्तु श्रीचैतन्यकी कृपासे वे सारे सुख इसके मनको नहीं भाते। अतः आप सभी लोग इसे आशीर्वाद प्रदान कीजिए, जिससे यह श्रीचैतन्य–चरणोंको प्राप्त कर सके। एकबार भी जिसे कृष्णके चरणकमलोंकी सुगन्ध प्राप्त हो जाती है, सांसारिक सुखकी तो बात ही क्या उसे तो परम दुर्लभ मोक्ष–सुख भी अच्छा नहीं लगता। उसे मुक्तिसुख नरकके समान प्रतीत होता है। जैसा कि भागवतमें भरत महाराजके विषयमें वर्णन है—

यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।
जहौ युवैव मलवदुत्तमःश्लोकलालसः॥

श्रीमद्भा० (५/१४/४३)

अर्थात् भरत महाराजने उत्तमःश्लोक श्रीकृष्णको प्राप्त करनेकी लालसासे युवावस्थामें ही हृदयग्राहिणी पत्नी, पुत्र, सुहृत् तथा राज्य आदिका मलकी भाँति परित्याग किया था।

तब श्रीनित्यानन्द प्रभुने रघुनाथदासको अपने पास बुलाकर उनके सिरपर अपने श्रीचरणकमल रख दिये तथा बोले—"रघुनाथ! तुमने यह पुलिन–भोजनकी सेवा करायी है। तुमपर कृपा करनेके लिए स्वयं श्रीगौरहरि यहाँपर पधारे थे। उन्होंने कृपा करके तुम्हारे द्वारा प्रदत्त दही–चिड़वा खाया तथा रात्रिके समय राघव पण्डितके घरमें नृत्यका दर्शनकर प्रसाद ग्रहण किया। वास्तवमें तुम्हारा उद्धार करनेके लिए ही श्रीगौरहरि यहाँपर आये थे। अतः अब अवश्य ही तुम्हारे मार्गकी समस्त विघ्न–बाधाएँ नष्ट हो जायेंगी। अब

तुम अवश्य ही श्रीगौरहरिके श्रीचरणकमलोंका आश्रय प्राप्त कर पाओगे। अपने अन्तरङ्ग सेवकके रूपमें वे तुम्हें सदा अपने निकट ही रखेंगे तथा तुम्हें अपने प्रिय स्वरूप दामोदरके हाथोंमें सौंप देंगे। अतः अब तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जाओ, अतिशीघ्र ही तुम्हें श्रीगौरहरिके चरणकमलोंकी प्राप्ति हो जायेगी।" ऐसा कहकर श्रीनित्यानन्द प्रभुने सभी भक्तोंके द्वारा भी रघुनाथको आशीर्वाद दिलवाया। रघुनाथने भी उन सभी भक्तोंकी चरण–वन्दना की।

रघुनाथदास द्वारा श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीराघव पण्डित एवं सभी भक्तोंकी चरण–पूजा

तत्पश्चात् प्रभु एवं भक्तोंसे आज्ञा लेकर रघुनाथ श्रीराघव पण्डितके पास गये तथा उनके साथ बैठकर एकान्तमें कुछ विचार–विमर्श किया। श्रीराघव पण्डितसे परामर्शकर उन्होंने श्रीनित्यानन्द प्रभुके भण्डारीको एक सौ मुद्राएँ तथा सात तोला स्वर्ण प्रदान किया तथा उनसे कहा कि श्रीनित्यानन्द प्रभुके यहाँसे वापस सजानेके बाद ही इस विषयमें उन्हें कुछ बताना। तब श्रीराघव पण्डित श्रीरघुनाथको अपने घर ले गये। उन्हें ठाकुरजीका दर्शन कराकर माला–चन्दन आदि प्रदान किया। इसके अतिरिक्त मार्गमें खानेके लिए भी बहुत–सा प्रसाद दिया। तब रघुनाथदासने कहा—"मैं प्रभुके सभी भक्तोंकी भी चरण–पूजा करना चाहता हूँ। जो जिस योग्य हैं, उन्हें उसीके अनुसार बीस, पन्द्रह, बारह, दस तथा पाँच मुद्राएँ प्रदान करेंगे।" यह सुनकर राघव पण्डितने समस्त भक्तोंके नामोंकी सूची तथा उनको दी जानेवाली दक्षिणाका विवरण एक पत्रपर लिख दिया। जिसके अनुसार रघुनाथदासने उन्हें अत्यन्त ही विनयपूर्व एक-सौ स्वर्ण मुद्राएँ तथा दो तोला सोना प्रदान किया तथा उनकी चरणधूलि अपने सिरपर धारणकर अपने घर लौट आये। क्रमशः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका भव्यरूपसे नव–निर्माण

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी प्रबल इच्छा थी कि मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका भव्यरूपसे पुनः निर्माण किया जाय। इसके लिए उन्होंनें अपने प्रकटकालमें ही मथुराके प्रमुख Engineer एवं Architect से परमार्श भी लिया था, किन्तु उनके प्रकटकालमें यह कार्य आरम्भ नही हो सका। श्रील गुरुदेवकी शुभेच्छा और आशीर्वादसे 'गौड़ीय वेदान्त समिति ट्रस्ट' के वर्तमान अध्यक्ष श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराजने 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ'के नव–निर्माणका दायित्व ग्रहण किया और ट्रस्टके अन्य सदस्योंकी प्रचेष्टा एवं मथुरा तथा अन्य स्थानोंके निवासी श्रील गुरुदेवके चरणाश्रित शिष्यों–प्रशिष्यों, अनुगतजनोंके सहयोगसे प्रायः तीन वर्षोंमें ही यह कार्य सुसम्पन्न किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका नव-निर्माण, उसकी ऐतिहासिक महिमा एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा वहाँ वास करते हुए सम्पादित गुरु-गौराङ्ग एवं गौड़ीय-सम्प्रदायकी सेवा

२ दिसम्बर २०२१ ई० को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके पुराने भवनको गिरानेका कार्य आरम्भ होनेसे पूर्व मठमें परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा स्थापित एवं सेवित 'श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी' के श्रीविग्रहोंके साथ-साथ अन्य सभी विग्रहोंको अस्थायी रूपसे मठके निकट स्थित निजी भवनमें स्थानान्तिरत कर वहाँ ही उनका नियमित सेवा-पूजा, भोग, उत्सव आदि कार्य सुष्ठु रूपसे सम्पन्न होता रहा।

वर्ष २०२२ ई० की अक्षय-तृतीयाकी शुभ तिथिपर वैष्णवोंके आनुगत्यमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके नवनिर्माणकी भित्ति स्थापनाका कार्य वैष्णव-पद्धति द्वारा किया गया। तत्पश्चात् मठ निर्माणका कार्य अनवरत् रूपसे चलता रहा। मथुरा नगरके मध्य अत्यधिक व्यस्त बाजारमें स्थित होनेके कारण निर्माण कार्य बहुत जटिल और चुनौतीपूर्ण भी था। मठको बहुमंजिला रूप दिया गया जिसमें श्रीविग्रहोंका सुन्दर गर्भग्रह, नाट्य-मन्दिर, सन्त-निवास, प्रसादम् हाल, यात्री-निवास आदि सम्मिलित हैं।

नाट्य-मन्दिर और श्रीविग्रहोंके परिक्रमा मार्गसे सलंग्न ही श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी स्मृतिमें उनकी नव-भजनकुटी निर्मित हुई है, जिसमें उनके द्वारा प्रकटकालमें व्यवहृत उनके वस्त्र-बर्तन, पादुका आदि वस्तुओंको संरक्षित एवं उनके द्वारा रचित-सम्पादित ग्रन्थोंको प्रदर्शित किया गया है।

नव-निर्मित मठका उद्घाटन

इस प्रकार वर्ष २०२४ ई० के अगस्त मासमें 'श्रीकृष्ण जन्माष्टमी'के शुभ अवसरपर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके नवीन एवं भव्य मन्दिर-भवनका उद्घाटन किया गया। एक दिन पूर्व मठके श्रीविग्रहोंको उनके अस्थायी स्थानसे लाकर उनके नवीन एवं सुन्दर गर्भगृहमें विधिवत् स्थापित किया गया। इसके साथ ही श्रीविग्रहोंके श्रीचरण प्रदेशमें बायीं और दायीं ओर क्रमशः श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज एवं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके नवीन श्रीविग्रहोंकी प्राण प्रतिष्ठा भी हुई।

इस महोत्सवमें देश-विदेशके अनेक भक्त सम्मिलित हुए। नगर-संकीर्तन एवं श्रीविग्रहोंके नव-मन्दिर प्रवेश दिवस, जन्माष्टमी एवं नन्दोत्सव चार दिनों तक सभीके

लिए विशाल महाप्रसाद भण्डारेकी व्यवस्था की गयी। इस प्रकार गुरुवर्गकी शुभेच्छा और आशीर्वादसे समस्त अनुष्ठान सुष्ठु रूपमें सम्पन्न हुए।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुराके नव-निर्मित भव्य मन्दिर-भवनमें 'श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी'के श्रीविग्रहोंको विराजित देखकर हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज, हमारे परमगुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर, सपरिकर श्रीगौराङ्ग महाप्रभु अत्यधिक प्रसन्न हो रहे होंगे—यह हमारा दृढ़ विश्वास है।

गौड़ीय आचार्योंकी पृष्ठभूमिमें मथुराकी ऐतिहासिक महिमा

श्रीमथुरा-भूमिकी अत्यधिक महिमाका शास्त्रोंमें स्थान-स्थान पर वर्णन है। प्रत्येक युगमें ही विभिन्न भक्तोंके यहाँ पर आकर वास करने, भजन-साधन करने, सिद्धि प्राप्त करने इत्यादिके अनेक-अनेक वृतान्त विभिन्न प्रामाणिक शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं उनके अन्तरङ्ग परिकर श्रील रूप गोस्वामी, श्रील सनातन गोस्वामी इत्यादिके मथुरामें आने और मथुराके विभिन्न स्थानोंका दर्शन करने आदि का वर्णन श्रीचैतन्य-चरितामृत एवं श्रीचैतन्य-भागवत इत्यादि ग्रन्थोंमें मिलता है।

परवर्त्ती कालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी धारामें श्रीरूपानुगप्रवर आचार्य, विश्वव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके संस्थापक जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने भी श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके उपलक्ष्यमें सपरिकर श्रीमथुरामें वास किया एवं उस अवसरपर अपने हृदयकी वार्ताको सुस्पष्ट रूपमें व्यक्त किया। हमारे परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीके रूपमें श्रील प्रभुपादके साथमें कुछ काल तक मथुरापुरीमें रहे थे और श्रील प्रभुपाद की हृद्गत भावनाको उन्होंने अपने हृदयमें एक विशेष स्थान दे करके संजोकर रखा था।

परवर्ती कालमें उन्होंने मथुरामें 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ' की स्थापना श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे ही की थी एवं हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेवको इस मठकी सेवाका दायित्व स्वयं ही अत्यधिक कृपापूर्वक प्रदान किया था।

हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेवने भी 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ'में वास करते हुए अपने श्रीगुरुदेव द्वारा प्रदत्त सेवा-दायित्वको सुष्ठुरूपसे सम्पादित करके अपने गुरुदेव एवं गौड़ीय गुरुवर्गकी सेवाका अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया है। अतएव 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ' केवल कोई एक साधारण भवन मात्र ही नहीं है, बल्कि यह मथुरा-मण्डलमें गौड़ीय-गुरुवर्गोंके विचारोंका संरक्षण करते हुए गौड़ीय-रूपानुग विचारधाराको जगत्में प्रचार-प्रसार करनेका एक प्रमुख केन्द्र रहा है।

हम क्रमशः श्रीमथुरा-माहात्म्य, श्रीचैत-न्य महाप्रभुके मथुरा आगमन, श्रील रूप गोस्वामी द्वारा सपरिकर एक मास तक मथुरामें वास, श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके द्वारा सपरिकर मथुरामें वास एवं उनकी अन्तर हृदयगत भावनाको प्रकटित करनेवाली उनकी कथा, हमारे परमगुरुदेवके द्वारा श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके लिए स्थानका संग्रह करना, वहाँपर विग्रह-प्रतिष्ठा एवं उनके अवस्थानका विवरण, तथा अन्तमें हमारे परमाराध्य गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ' मथुरामें वास करते हुए विशुद्ध गौड़ीय-रूपानुग विचारोंका विभिन्न माध्यमोंसे संरक्षण और प्रचार-प्रसार इत्यादि किस प्रकारसे किया गया, अब इन विषयोंको संक्षिप्तरूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास कर रहे हैं—

मथुरा-माहात्म्य

भूमण्डलमें अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती, द्वारावती-ये मोक्षको प्रदान करनेवाली सप्त पुरियाँ हैं, किन्तु इनमेंसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्मस्थली मथुरा ही सर्वश्रेष्ठ है। यह केवल मोक्ष ही नहीं, अपितु भगवत्-प्रेम प्रदान करनेवाला, मायासे

सम्पूर्ण रूपसे अतीत सच्चिदानन्दमय भगवत्-धाम है। सुदर्शन चक्रके द्वारा सुरक्षित रहनेके कारण प्रलय आदि विकारोंका इसपर प्रभाव नहीं पड़ता है। वैकुण्ठकी तो बात ही क्या, पट्ट (प्रमुख) महीषियोंसे सुशोभित द्वारकापुरीकी अपेक्षा भी यह अधिक प्रशंसनीय है।

इस मथुरापुरीका कभी भी विनाश नहीं है। सत्ययुगके प्रारम्भमें बालक ध्रुव एवं देवर्षि नारदका यहींपर मिलन हुआ था। यहीं यमुनाके एक घाटपर यमुनामें स्नानकर बालक ध्रुवने नारदजीसे भगवत्-मन्त्र ग्रहण किया और पास ही मधुवन महौलीमें भगवत्-आराधना करके सिद्धि प्राप्तकी थी।

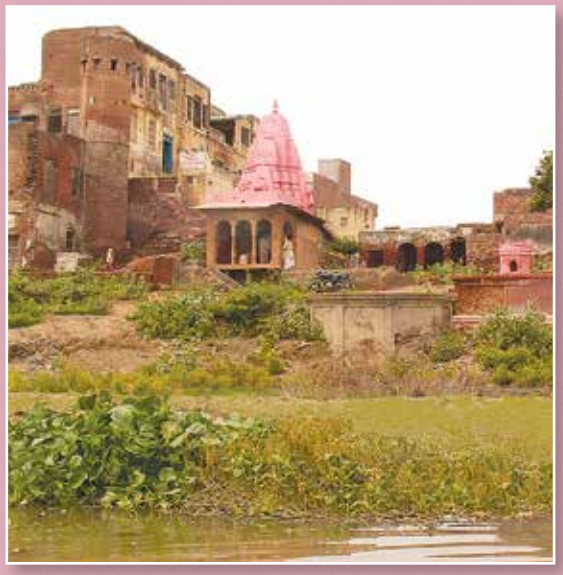

सत्ययुगमें महाराज अम्बरीष यहींपर द्वादशी व्रतका पालन कर रहे थे। उसी समय दुर्वासा ऋषि वहाँ पधारे और यहींपर दुर्वासा ऋषिने भक्त अम्बरीष महाराजकी महिमाकी उपलब्धि की। सुदर्शन चक्रसे कैसे दुर्वासा ऋषिकी रक्षा हुई—चक्रतीर्थ और अम्बरीष टीला आज भी इसके साक्षी हैं।

त्रेतायुगमें श्रीशत्रुध्नजीने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका आदेश पाकर यहींपर मधुदैत्यके पुत्र लवणासुरका वध किया था। यह वृत्तान्त सर्वविदित है। द्वापरमें श्रीकृष्णकी जन्मादि विविध लीलाओंकी स्थली होनेका गौरव इसे प्राप्त है। श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यासका इस मथुरा भूमिपर यमुनाके द्वीपमें जन्म प्रसिद्ध है।

कलियुगमें श्रीराधाकान्ति एवं भावसे युक्त स्वयं भगवान् श्रीशचीनन्दन गौरहरि ब्रजधामके दर्शन हेतु सर्वप्रथम मथुरामें ही पधारे थे और यहीं विश्रामघाटमें स्नानकर उन्होंने चौरासी कोस ब्रजमण्डलकी लीला-स्थलियोंका दर्शन किया। इसके पूर्व श्रीअद्वैताचार्य, श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीलोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भ गोस्वामीके भी मथुरा-मण्डलमें आनेका वर्णन प्राप्त होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके पश्चात् उनके अन्तरङ्ग परिकर श्रील रूप, सनातन आदि गोस्वामियोंने मथुरा एवं ब्रजमें सर्वत्र भ्रमण किया। इसके अनन्तर भी हमारे सभी गौड़ीय आचार्योंका मथुरा ब्रजमण्डलमें आनेका प्रसङ्ग श्रीचैतन्य-चरितामृत एवं भक्ति-रत्नाकर आदि ग्रन्थोंमें सर्वत्र उल्लिखित है।

पुराणोंमें मथुरापुरीकी भूरि-भूरि महिमाका उल्लेख है। द्वादशवनके अन्तर्गत मथुरा कमलाकृति स्वरूप है। भगवान् श्रीकेशवदेवजी इस पुरीके मध्यमें कर्णिकाके रूपमें विराजमान हैं। उत्तरकी पंखुड़ीमें श्रीगोविन्ददेवजी (वृन्दावनमें) विराजमान हैं, जिनके दर्शनसे मनुष्य संसार चक्रसे सदाके लिए मुक्त हो जाता है। पूर्वकी पंखुड़ीमें विश्राम घाटपर विश्राँति नामक भगवत्-स्वरूप

विराजमान हैं तथा दक्षिणकी पंखुड़ीपर सर्वसिद्धि प्रदान करनेवाले आदिवराहदेवजी विराजमान हैं। श्रीहरिके प्रियधाम मथुराके क्षेत्रपाल—भूतेश्वर महादेव हैं। मथुरामें जहाँ-तहाँ स्नान करनेसे जीवोंके समस्त पाप दूर हो जाते हैं और पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। भगवान् अपने श्रीमुखसे कह रहे हैं कि हे वसुन्धरे! पाताल लोकमें, मनुष्य लोकमें या अन्तरीक्षमें कहीं भी निश्चित् रूपसे मथुरा जैसा और मेरा कोई भी प्रिय स्थान नहीं है। हे वसुन्धरे! मेरे शयनकालमें (चातुर्मास्यमें) पृथ्वीके सारे तीर्थ, समुद्र, सरोवर, मथुरामें निवास करते हैं।

स्कन्दपुराणमें ऐसा उल्लेख है कि जो फल भारतवर्षके किसी अन्य भागमें लाखों वर्षों तक वास करनेसे प्राप्त होता है, वही फल मथुरा नगरीके एक बार स्मरणमात्रसे ही प्राप्त हो जाता है। श्रीमथुरामें जप, उपवास करनेवाले मनुष्य श्रीकृष्णके जन्म स्थानका दर्शनकर समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाते हैं। ब्रह्मघाती (ब्राह्मणका वध करनेवाला), मद्यपायी, गो-घाती तथा ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट पापी व्यक्ति भी मथुराकी परिक्रमा करनेमात्रसे उक्त सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। अन्य दूर देशोंसे आकर जो लोग मथुरापुरीकी परिक्रमा करते हैं, लीलास्थलियोंके दर्शनमात्रसे वे सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। यहाँ तक कि यदि कोई व्यक्ति 'मैं मथुरामें वास करूँगा'—ऐसा सङ्कल्प करता है तो वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

पद्मपुराणमें तो यहाँ तक कहा गया है कि जहाँ कहींसे भी किसीने मथुरा दर्शन करनेकी अभिलाषा की, किन्तु दर्शन करनेसे पहले ही जहाँ कहीं भी उसकी मृत्यु क्यों न हो जाये, उसका निश्चय ही मथुरामें जन्म होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। प्रकृतिसे अतीत इस मथुरापुरीमें केवल उन्हीं लोगोंकी रति होती है जिनकी भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति रहती है तथा जो श्रीकृष्णके प्रचुर कृपापात्र हैं।

वायुपुराणमें बतलाया गया है कि मथुरा-मण्डल चौरासी कोसमें परिव्याप्त है। भगवान् श्रीहरि यहाँ सदा-सर्वदा स्वयं निवास करते हैं। अहो! श्रीनारायणके धाम वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ यह मथुराधाम धन्य है, जहाँ केवल एक दिन निवास करनेसे ही श्रीहरिभक्ति प्राप्त हो जाती है। तीन रात्रि निवास करनेवालेको परम दुर्लभ भगवत्-प्रेम प्राप्त हो जाता है। यह मुक्त महापुरुषोंके लिए भी परम दुर्लभ है।

श्रील रूप गोस्वामीने 'श्रीमथुरा-माहात्म्य'में ऐसा उल्लेख किया है—"हे अवन्ति! तुम अपने हाथोंमें पीकदानी लेकर प्रस्तुत हो जाओ, हे मायापुरी (हरिद्वार)! तुम चामर व्यजन करनेके लिए प्रस्तुत हो जाओ, हे काञ्चि! तुम अपने हाथोंमे छत्र ग्रहण करो, हे काशि! तुम हाथोंमें पादुका ग्रहण कर प्रस्तुत रहो, हे अयोध्या! तुम और न डरो, हे द्वारके! आज तुम स्तव-स्तुति मत करो; क्योंकि तुम किङ्करियोंसे प्रसन्न होकर ये मथुरादेवी आज महाराजाधिराज श्रीकृष्णकी राजमहिषी हुई हैं।"

श्रीमन्महाप्रभुका मथुरामें आगमन

मथुरा-निकटे आइला—मथुरा देखिया।
दण्डवत् हञा पड़े प्रेमाविष्ट हञा ॥
मथुरा आसिया कैला 'विश्राम-तीर्थे स्नान।
'जन्मस्थाने 'केशव' देखि' करिला प्रणाम॥
प्रेमावेशे नाचे, गाय, सघने हुङ्कार।
प्रभुर प्रेमावेश देखि' लोके चमत्कार ॥

-चै०च० मध्य (१७/१५५-१५७)

[मथुराके निकट आनेपर मथुराको देखकर श्रीमन्महाप्रभुने दण्डवत् प्रणाम किया और प्रेमाविष्ट होकर कुछ समय वहीं पड़े रहे। मथुरामें आकर श्रीमन्महाप्रभुने विश्राम-घाटपर स्नान किया। तत्पश्चात् वे श्रीकृष्ण-जन्मभूमिपर आये और वहाँ भगवान् श्रीकेशवदेवके दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया। वहाँ महाप्रभु प्रेममें आविष्ट होकर नृत्य करने लगे, गाने लगे और जोरसे हुङ्कार करने लगे। उनके प्रेमावेशको देखकर वहाँ उपस्थित लोग आश्चर्यचकित हो गये।]

* * *

यमुनार 'चब्बिश-घाटे' प्रभु कैल स्नान।
सेइ विप्र प्रभुके देखाय तीर्थस्थान ॥
स्वयम्भु, विश्राम, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर।
महाविद्या, गोकर्णादि देखिला विस्तर ॥

-चै०च० मध्य (१७/१९०-१९१)

[श्रीमन्महाप्रभुने मथुरामें यमुनाके चौबीस घाटोंपर स्नान किया। उन ब्राह्मणने महाप्रभुको स्वयम्भु, विश्रामघाट, दीर्घविष्णु, भूतेश्वर, महाविद्या, गोकर्णादि सभी तीर्थस्थानोंका दर्शन कराया।]

श्रील रूप गोस्वामीका एक मास तक मथुरामें वास

वृद्धकाले रूप-गोसाञि ना पारे याइते।
वाञ्छा हैल गोपालेर सौन्दर्य देखिते ॥
म्लेच्छभये आइला गोपाल मथुरा-नगरे।
एकमास रहिल विठ्ठलेश्वर-घरे ॥
तबे रूप-गोसाञि सब निजगण लञा।
एकमास दरशन कैला मथुराय रहिया॥
सङ्गे गोपाल-भट्ट, दास-रघुनाथ।
रघुनाथ-भट्टगोसाञि, आर लोकनाथ॥
भूगर्भ-गोसाञि, आर श्रीजीव-गोसाञि।
श्रीयादव-आचार्य, आर गोविन्द-गोसाञि॥
श्रीउद्धवदास, आर माधव, दुइजन।
श्रीगोपाल-दास, आर दास-नारायण॥
'गोविन्द' भक्त, आर वाणी-कृष्णदास।
पुण्डरीकाक्ष, ईशान, आर लघु-हरिदास॥
एइ सब मुख्यभक्त लञा निज-सङ्गे।
श्रीगोपाल दरशन कैला बहु-रङ्गे॥
एकमास रहि' गोपाल गेला निज-स्थाने।
श्रीरूप-गोसाञि आइला श्रीवृन्दावने॥

-चै०च० मध्य(१८/४६-५४)

[वृद्धावस्थामें श्रीरूप गोस्वामी श्रीगोपालके दर्शनके लिये नहीं जा पा रहे थे, किन्तु उनके हृदयमें श्रीगोपालके सुन्दर रूपके दर्शन करने की अभिलाषा थी। तब

म्लेच्छोंके भयसे उनके सेवक उन्हें मथुरा-नगरीमें ले आये और वहाँ वे एक मास तक श्रीविठ्ठलेश्वरके घरमें रहे। यह जानकर श्रीरूप गोस्वामी अपने निजजनोंके साथ मथुरामें आये और वहाँ एक मास तक रहकर श्रीगोपालके दर्शनके किये। श्रीरूप गोस्वामीके साथ श्रीगोपाल-भट्ट, श्रीरघुनाथदास, श्रीरघुनाथ-भट्ट, श्रीलोकनाथ, श्रीभूगर्भ-गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीयादव-आचार्य, श्रीगोविन्द, श्रीउद्धवदास, श्रीमाधव श्रीगोपाल-दास, श्रीदास-नारायण, 'श्रीगोविन्द' भक्त, श्रीवाणी-कृष्णदास, श्रीपुण्डरीकाक्ष, श्रीईशान और छोटे-हरिदास आदि भक्त थे। इन सब मुख्य भक्तोंको अपने साथ लेकर श्रीरूप गोस्वामीने बड़े आनन्दपूर्वक श्रीगोपालके दर्शन किये। एक मास तक मथुरामें रहकर श्रीगोपाल अपने स्थानपर लौट गये और श्रीरूप गोस्वामी श्रीवृन्दावन धाममें आ गये।]

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादका एक मास व्यापी श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाके लिए मथुरामें आगमन एवं विभिन्न दिवसोंपर कथित उनकी हरिकथाके अंश

वर्ष १९३२ ई० की साप्ताहिक-गौड़ीयमें-से हमें निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है—

१ अक्टूबर १९३२, शनिवारको हावड़ा-स्टेशनसे दिल्ली एक्सप्रेस ट्रेन द्वारा सपार्षद ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादने श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके लिए श्रीरूपानुगवर सेनापतिरूपमें श्रीमथुराके लिए प्रस्थान किया।

२ अक्टूबर, १९३२ को दिल्ली एक्सप्रेस ट्रेन हाथरस जंक्शन पहुँची। वहाँसे श्रील प्रभुपादने श्रीगौड़ीय मठके मोटरयान (car) में एवं बाकी भक्तगणोंने दो बसोंके द्वारा प्रायः ३२ मील पश्चिम मथुराकी ओर यात्रा की।

मथुरा-कैन्ट स्टेशनके सन्निकट Dampier Park स्थित 'श्रीबलदेव विलास भवन'में श्रील प्रभुपादके रहनेकी व्यवस्था की गयी थी। श्रील प्रभुपाद पहले ही मोटरयान द्वारा वहाँ पहुँच चुके थे। भक्तोंके वहाँ उपस्थित होते ही श्रील प्रभुपादने श्रीकृष्णानुशीलनके सम्बन्धमें प्रसङ्ग आरम्भ किया। श्रील प्रभुपादने कहा-"श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने विष्णुके अनुशीलन या नारायणके अनुशीलनकी बात न कहकर एकमात्र कृष्णानुशीलनका ही विचार कहा है। 'ब्रह्मानुशीलन' नाम का कोई विषय ही नहीं हो सकता, जबतक कि 'ब्रह्म' शब्दके मुख्य अर्थसे भगवद्वस्तुका निर्देश न हो। परमात्मानुशीलन भी कृष्णानुशीलन नहीं है। उसमें अनुशीलन, अनुशीलनकी प्रतिपाद्य वस्तु एवं अनुशीलनकारीकी धारणाका पूर्णता अभाव है। कृष्णानुशीलन करनेके लिए प्रथमतः कार्ष्णानुशीलन (कृष्णभक्तोंका अनुशीलन) आवश्यक है, कार्ष्णानुशीलनके बिना कृष्णानुशीलन नहीं होता। कृष्णानुशीलन या कार्ष्णानुशीलन अनुकूल भावसे होनेपर ही प्रेमफल प्रसव होता है। कार्ष्णके साथ प्रतियोगिता, कार्ष्णके प्रति मनुष्य बुद्धि, उनके प्रति प्राकृत विचार कृष्ण-अनुशीलन नहीं है।"

श्रील प्रभुपादकी उपस्थितिमें हुई व्रजमण्डल परिक्रमाके समय मथुराके Dampier Park में 'श्रीबलदेव विलास भवन'के सम्मुख खाली भूमिखण्डपर तम्बू लगाकर अनेक यात्रियोंके रहने की व्यवस्था की गयी।

३, ४ और ५ अक्टूबर १९३२ ई० को सायंकाल श्रील प्रभुपादने मथुरामें अपने वास स्थानपर मुक्तपुरुषोंकी स्वाभीष्ट प्रार्थनामयी महाजन-गीतिको अपने भक्तों द्वारा कीर्तन करवाकर—सिद्धिलालसाका आदर्श प्रत्येक साधककी अनर्थ-निवृत्तिके पश्चात् एकमात्र प्रयोजन होना चाहिए—इसे प्रकाशित किया। श्रील प्रभुपादके चयन-अनुसार भक्तोंने श्रील नरोत्तम दास ठाकुर एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित इन कीर्तनोंका गान किया, यथा—

३ अक्टूबरको

(क) हरि हरि ! कबे हबो वृन्दावनवासी।
निरखिब नयने युगल-रूपराशि॥
(ख) राधाकृष्ण सेवुं मुञि जीवने मरणे।
ताँर स्थान, ताँर लीला देखुँ रात्रि दिने॥

४ अक्टूबरको

(क) हरि हरि ! आर कबे पालटिबे दशा।
ए-दशा करिया वामे, जा'व वृन्दावन-धामे,
एइ मने करियाछि आशा॥
(ख) देखिते देखिते, भुलिब वा कबे,
निज स्थूल परिचय।
नयने हेरिबो, व्रजपुर शोभा,
नित्य चिदानन्दमय॥

५ अक्टूबरको

(क) राधाकुण्डतट-कुञ्जकुटीर।
गोवर्धन-पर्वत, यामुनतीर॥
(ख) यमुना-पुलिने, कदम्ब-कानने,
कि हेरिनु सखि ! आज।
श्याम वंशीधारी, मणिमञ्चोपरि,
करे लीला रसराज॥

श्रीश्रीविश्ववैष्णव राजसभाके वर्तमान पात्रराजप्रवर [सभापति] परमहंस परिव्राजकाचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके नेतृत्वमें चौरासी कोस श्रीश्रीव्रजमण्डल परिक्रमा ९ अक्टूबर, १९३२ ई० रविवार श्रीरामचन्द्रजीके विजयोत्सव, श्रीमन्मध्वाचार्यकी आविर्भाव तिथिसे आरम्भ हुई।

व्रजमण्डल परिक्रमाके प्रथम एवं द्वितीय दिवस अर्थात् ९ एवं १० अक्टूबर १९३२ को, परिक्रमाके यात्रियोंने 'बलदेव विलास भवन' डैम्पियर नगर, मथुरामें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अनुगत्यमें श्रवण-कीर्तनके माध्यमसे मथुरा परिक्रमा करते हुए श्रीमन्महाप्रभु पदाङ्कित विभिन्न स्थानोंके दर्शन किए।

परिक्रमा-शोभायात्राके सबसे आगे अति सुन्दर रूपसे सुसज्जित सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु, तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद एवं उनके पदानुसरण करते हुए दीर्घ सङ्कीर्तन-दलने श्रीमथुरापुरीकी परिक्रमा आरम्भ की। विविध बैण्ड एवं मृदङ्ग, करतालादि वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे चारों दिशाऐं मुखरित हो गई। सुशोभित अश्व, पताका, दीर्घ पुष्पमालाओंसे सुशोभित झाँकियोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी, जिसे दर्शन करके श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रकटलीलाकी कथा और प्राचीन भारतके गौरवकी गाथा सबके स्मरण पथपर उदित हो रही थी। उस दिन परिक्रमाके यात्रियोंने उच्चस्वरमें श्रीहरिनाम सङ्कीर्तन करते-करते कंसवध-स्थली, विश्रामघाट, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, कंस-कारागार, आदिकेशव एवं अन्यान्य लीला-स्थलियोंका दर्शन किया।

पुनः कार्तिक शुक्लादशमी दिवसपर परिक्रमा-शोभायात्रा मथुरा शहरमें कंसटीलाके निकटस्थ स्थानपर समुपस्थित हुई। वहाँ निर्विशेषवाद-विधवंसक-मूलक उच्च-नाम सङ्कीर्तनका कोलाहल जब चारों दिशाओंको मुखरित कर रहा था, उस समय इस स्थानपर श्रीकृष्ण द्वारा निर्विशेषवादी कंसकी वध-लीलाका अभिनय वहाँके अधिवासी जनों द्वारा प्रदर्शित हो रहा था। कंसवध लीला और श्रीगोपाष्टमीके उपलक्ष्यमें तब भी इस टीलेके ऊपर चार दिवस व्यापी मेला और उत्सव अनुष्ठित हो रहा था।

वैकुण्ठमें भगवान् अजन्मा हैं और मथुरामें उन अजन्मा भगवान्का जन्म हुआ है। अतः मथुरा वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ है। निर्विशेषवादी सम्प्रदाय यहाँ ध्वंसको प्राप्त हुआ था। कंस उस निर्विशेषवादका आदर्श था। कंसके अनुगामी स्मार्त्तसम्प्रदाय भी यहाँ विनष्ट हुए थे। रजक धोबी उस कर्मजड़ स्मार्त्त सम्प्रदायका प्रतीक था। "*सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव-शब्दितं*"—*इस* मथुरामें यह विचार प्रस्तुत हुआ था। 'वासुदेव' शब्द भगवद् वस्तुके स्वरूप—विज्ञानके लिए अधिकतर उपयोगी शब्द है। द्वारकाकानाथमें पूर्णता, मथुरानाथमें पूर्णतरता और गोकुलनाथमें पूर्णतमता प्रकाशित है।

श्रीकृष्ण एवं बलदेव प्रभु मथुरा आये थे – कंसके वधके लिए। कंस निर्विशेषवादी था। वह भगवान्के नाम, रूप, गुण, परिकर-वैशिष्ट्य और लीलाकी नित्यताको अपने बाहुबलसे स्वीकार नहीं करना चाहता था।

इस मथुरामें ही समस्त बारह रसोंके एक ही मूर्तिमान विषयविग्रह श्रीकृष्णको भक्तोंने अपने-अपने विभिन्न रसोंके अनुरूप दर्शन किए थे, यथा–

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां
स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः॥

(भा. १०/४३/१७)

मथुराके सुप्रसिद्ध एडवोकेट रामदयाल चौबेने 'विश्वप्रेममण्डल'की ओरसे ८, ९ और १० नवम्बर १९३२ ई० को मथुरा नगरीमें वक्तृताओंका आयोजन किया था। श्रील प्रभुपादके सभापतित्त्वमें ८ नवम्बरको श्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराजने "श्रीकृष्ण और मथुरा"के सम्बन्धमें अंग्रेजीमें वकृता प्रदान की। ९ नवम्बरको श्रीमद्भक्तिविलास गभस्तनेमि महाराजने "सनातन धर्म और भक्ति" सम्बन्धमें हिन्दी भाषामें अभिभाषण दिया। १० नवम्बरको श्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराजने "श्रीकृष्ण चैतन्य और प्रेम"के सम्बन्धमें अंग्रेज़ी भाषामें वकृता प्रदान की। सभापतिके अभिभाषणके रूपमें श्रील प्रभुपादने इन सब विषयोंकी विशेष भावसे आलोचना की।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद द्वारा श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके समय मथुरा आदि स्थानोंपर तत्कालीन धार्मिक-समाज एवं गौड़ीय-सम्प्रदायकी अवस्थाको लक्ष्यकर कथित हरिकथासे संग्रहीत कुछ बिन्दु–

१} गौड़ीय-वैष्णव धर्मके प्रचार कार्यमें व्रजमण्डलमें भक्तिरसामृतसिन्धुका प्रचार एवं श्रीचैतन्यचरितामृतके रहस्यकी कथाका उद्घाटन नहीं होनेके कारण तथा व्रजमण्डलके गौड़ीय-वैष्णवगण एवं व्रजवासियोंमें श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा और गौड़ीय-भजनके रहस्यकी किसी कथाके प्रचार न होनेके कारण परमार्थ धर्मके पालनमें विशेष बाधा अनुभव हो रही है।

२) श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा प्रचारित धर्म एवं श्रीरूप-सनातनके भक्तिसदाचार धर्मका वर्तमानकालमें मथुरा-मण्डलमें प्रचुर रूपसे प्रचार होना आवश्यक है। कारण — वर्तमानमें मथुरा-मण्डलमें कृष्णोपासक ब्रुव व्यक्तियोंकी संख्या ही अधिक परिदृष्ट होती है। श्रीवृन्दावन स्थित सप्त देवालयोंमें कृष्णोपासनाकी चेष्टा सन्दर्शनसे गौड़ीयजन आनन्दित होते हैं, किन्तु गौड़ीय-वैष्णव धर्मकी कथामें कोई जागतिक मलिनता प्रवेश न करे—इसको विशेष रूपसे लक्ष्य करना होगा।

३) श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छासे श्रील रूप-सनातन द्वारा परिशोधित शुद्धभक्ति सदाचार परवर्तीकालमें कहीं मलिनधारामें और कहींपर अति क्षीण धारामें निर्जनमें पालित होनेपर भी जनसाधारणके लिए वह एक अज्ञात वस्तु था। भक्तिहीन प्रदेशोंमें शुद्धभक्ति सदाचार प्रवर्तकवर वैष्णव-स्मृति-प्रचारक श्रील सनातन गोस्वामी एवं श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी सङ्कलित स्मृतिका अनादर देखकर गौड़ीयगण व्यथित हैं।

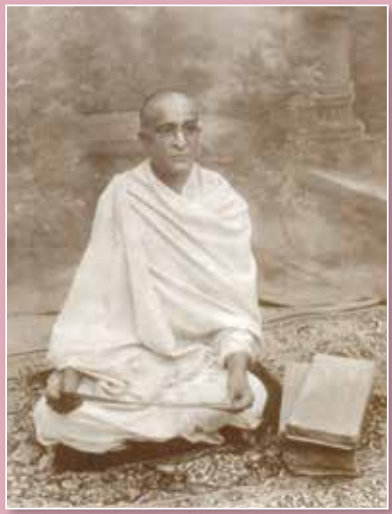

४) उत्तर भारतके लोगोंका कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, अन्याभिलाषके प्रति आदर रहनेके कारण उनमें भक्ति सदाचार समझनेमें बाधा है। प्रकृत (वास्तविक) व्रजवासीजन सभी नित्य-सिद्ध, विगत-मोह, भक्ति सदाचारी, सरल और अकपट वैष्णव-बान्धव हैं और जो अघासुर, बकासुर, पूतना और कंस आदिके वंशज या प्रतिनिधिके रूपमें कपटभावसे व्रजवासी सजने या व्रजमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करते हैं, वे सब नन्दनन्दनकी गोवर्धन-पूजाके विघ्नकारी हैं। 'गो' अर्थात वाणी, वाणी-विस्तार (वर्धन); श्रीनन्दनन्दनकी वाणी प्रचारके द्वारा ही उनका इन्द्रियवर्धन या 'कृष्णेन्द्रिय तर्पण' होता है। व्रजवासीगण कृष्णेन्द्रिय तर्पणमें सर्वदा नियुक्त रहते हैं। जो श्रीकृष्णकी वाणीके प्रचारमें—गोवर्धन पूजामें सहायता करनेके स्थानपर विघ्न प्रदान करते हैं, वे मूढ़ और अनाचारी हैं।

५) 'व्रजवासी' कहनेसे चिन्मय विचार सम्पन्न हरिसेवकजनको ही जानना होगा, यह हरिजनविरोधी इतर-विषयोंमें आविष्ट भोगीको लक्ष्य नहीं करता। यदि साधक व्रजके रागात्मिकजन, यथा—चित्रक-पत्रक, श्रीदाम-सुबल, नन्द-यशोदा, ललिता-विशाखा आदि गोपियोंका आनुगत्य नहीं करे, उनके अनुगामी न हो, तब तो उसका व्रजवास नहीं होगा, अनुराग भी नहीं होगा। वे रागात्मिकजन ही नित्यसिद्ध व्रजवासी हैं।

६) व्रजवासियोंमें-से किसी एकके भावोंका अनुगमन करते हुए श्रीव्रजभूमिपर अवस्थानपूर्वक समस्त काल यापन करना ही विधेय है। जिनका जैसा रस है, उनको उस रसकी कथाके विषयमें जिज्ञासा करनी होगी—मधुर-रसकी जिज्ञासा होनेपर हमें मधुर-रसके व्रजवासीके निकट जाना होगा। ललिता-विशाखा, श्रीरूपमञ्जरी इत्यादि। व्रजवासी होनेके लिए नित्यसिद्ध व्रजवासियोंकी एकान्तिक सेवा आवश्यक है।

७) कृष्णका अनुसन्धान करनेके लिए हमें सर्वप्रथम कार्ष्ण (कृष्णभक्त)का अनुसन्धान करना होगा। शुद्ध-वैष्णवके चरणकमलोंका आश्रय न करनेके कारण—अवैष्णवको 'वैष्णव' माननेके कारण हमारे लिए असुविधा हो रही है।

८) वर्तमानमें हम 'पैसा' 'पैसा' करते हुए घूम रहे हैं। क्या करनेसे पुण्य प्राप्त होता है, किस तीर्थमें कितनी बार आचमन और सङ्कल्प करनेसे स्वर्गमें नाना प्रकारके सुख-सम्पदको प्राप्त किया जा सकता है, किस स्थानपर कितनी बार भ्रमण करनेसे चक्षुकी तृप्ति अधिक होगी— इसीमें ही हम प्रमत्त हुए पड़े हैं। भागवतकी कथा हमारे किसीके भी कानमें नहीं गयी है। कृष्णकी कथाको हममेंसे कोई भी जानना नहीं चाहता। कारण, कृष्णकी कथाको जाननेके लिए हमे कार्ष्ण (कृष्णके शुद्धभक्त) के पास जाना होगा और कार्ष्ण तो हमारी इन्द्रिय-तृप्तिकी कथा न बोल कर केवल कृष्णकी इन्द्रिय तृप्तिकी कथा बोलेंगे ।

९) जो मुक्तिको भुक्ति जानकर पदाघात नहीं कर सकते, वे भक्तिपदवी प्राप्त नहीं कर सकते। शुद्धभक्ति ही परमाभक्ति है। उस भक्तिमें चार प्रकारकी कामुकता नहीं है। धर्म-अर्थ-काम और मोक्षकी अभिलाषा ही कामुकता है। षड्-गोस्वामियोंने व्रजभूमिपर इस प्रकारकी कामुकताकी गन्धसे हीन हरिकथा बोली थी।

१०) कोई ऐसा नहीं मान ले कि स्थूल शरीरके द्वारा भगवान्‌की सेवाकी जा सकती है, क्योंकि जड़ चक्षु, कर्ण, आदि स्थूल इन्द्रियों और मन आदि सूक्ष्म इन्द्रियोंके द्वारा हरिभजन नहीं होता। किन्तु, यही सब तो इस जगत्‌में हमारे सम्बल हैं। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी प्रभुने इन्द्रिय किस प्रकारसे अतिन्द्रिय-राज्यमें पहुँचनेकी योग्यता प्राप्त कर सकती हैं, उसके लिए एक कौशल बताया है। यथा,—इन्द्रिय जब अपनी चेष्टासे अतिन्द्रिय-राज्यमें पहुँचनेका प्रयास करती हैं, तब वे विफल होती हैं। इसलिए आरोहवादी लोग अप्राकृत तत्त्वका सन्धान नहीं पा पाते। किन्तु इन्द्रिय जब अतीन्द्रिय-राज्यसे अवतीर्ण सेवोन्मुखतासे आलोकित होती हैं, तभी इन्द्रिय अतीन्द्रिय विषयकी धारणाकी योग्यता प्राप्त करती हैं। तब फिर इन्द्रियोंकी बर्हिमुखता नहीं रहती। इन्द्रिय सेवोन्मुखतासे उद्भासित होकर अतीन्द्रियके अन्तःपुरमें प्रवेशका अधिकार प्राप्त करती हैं।

११) जो लोग प्राकृत विचारके द्वारा अतीन्द्रिय धारणा करने जाते हैं, उनका विचार अस्पृश्य है। वे अतीन्द्रिय-राज्यमें प्रवेश नहीं कर सकते।

सर्वोपाधि-विनिर्मुक्तं तत्-परत्वेन निर्मलम्।
हृषीकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिर उच्यते॥

श्रीनारद-पञ्चरात्र (१/१/१२)

व्रजवासियोंमें उपाधिका कोई विचार ही नहीं है। यही व्रजवासियों और कर्मजड़ स्मार्तोंमें पार्थक्य है। व्रजवासिगण स्वभावतः ही समस्त उपाधियोंसे निर्मुक्त, कृष्ण-परायण और निर्मल हैं। उपाधिका विचार रहने तक हमें परमार्थी या भागवतजनका दर्शन सम्भव नहीं। मथुरा भूमिपर यदि जल-कीचड़-पत्थर इत्यादि बुद्धि बनी रही, तब तो वह 'यस्यात्मबुद्धिः कुणपे' श्लोकका विचार हो गया। खीरके साथ यदि थोड़ा चूना मिश्रित कर दिया जाय तो वह मनुष्यके ग्रहण करनेके अयोग्य हो जाता है, उसी प्रकार शुद्धभक्तिके साथ उपाधिका कोई मत मिश्रित करनेसे वह उसी प्रकार श्रीकृष्णके लिये अग्रहणीय होता है।

१२) जहाँपर अतिमर्त्य आचार्यकी वाणी द्वारा सम्मुखरित चेतनवृत्तिका जागरण नहीं है, वहाँ अर्थ अनर्थ प्रसव करता है। जो लोग श्रीगुरुपादपद्मकी वाणीरूपी गङ्गामें स्नात जीवनको ही सर्वश्रेष्ठ विचार कर सकते हैं, वे ही श्रीगुरु-गौराङ्गकी कृपा प्राप्त कर अप्राकृत व्रजभूमिकी परिक्रमाका निमन्त्रण प्राप्त कर सकते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद द्वारा प्रवर्तित श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाके मुख्य आकर्षण—

१) श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा अनुक्षण अतिमर्त्य महापुरुषकी जीवन्तवाणीसे मुखरित थी। प्रति मुहूर्त्त परिक्रमाका उद्देश्य, सार्थकता, विशेष-विशेष स्थानोंपर विशेष-विशेष उद्दीपनाकी कथाका परिवेशन हुआ। श्रीमन्महाप्रभुके आचरण और स्मृतिसे युक्त एक ओर तो आचार्यके सेवक-सम्प्रदायने आचार्यका सम्पूर्ण आनुगत्य-धर्म सबको प्रदर्शितकर समझा दिया। दूसरी ओर गौरव्रजजन श्रील प्रभुपादने अनुक्षण अविराम श्रीहरिकथामृत-तरङ्गिनीके प्रवाहमें श्रीव्रजभूमिका नित्य स्वरूप सबके समक्ष प्रकट किया।

२) साक्षात् श्रीगौर निजजन, गौर-प्रणयी महाभागवतका पदाङ्कानुसरण करते हुए उनसे श्रीचैतन्यवाणी श्रवण करते-करते श्रेष्ठ साधन भक्ति-अङ्ग-पञ्चक याजन और सर्वश्रेष्ठ नाम-सङ्कीर्तनमें अपराधरहित प्रवेशकी चेष्टा ही परिक्रमाका आदर्श रहा। श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमामें श्रीगौरजनोंके श्रीमुखसे व्रजमण्डलकी लीला-स्थालियोंकी उद्दीपनाओंसे विभावित जो हरिकथामृत महोत्सव प्रवाहित हुआ, वह दुर्लभ था।

३) श्रील प्रभुपाद कभी हिन्दी भाषामें, कभी बङ्गलामें और कभी अंग्रेजीमें हरिकथा—श्रीमन्महाप्रभुकी कथा—व्रजके निगूढ़ भजन-तात्पर्यकी कथाका कीर्तन करते। जिन्होंने एकाग्र चित्तसे इस श्रीचैतन्यवाणीके श्रवण-कीर्तनमें आप्लावित होकर परिक्रमा की, वे नवद्वीपके नवधाभक्तिरस और द्वादशवनोंमें अखिलरसामृत मूर्तिके द्वादश रसोंकी औदार्य-माधुर्यमय मूर्तिकी युगपत उपलब्धिके योग्य हुए।

४) विभिन्न संन्यासी, ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ भक्तोंके द्वारा श्रील प्रभुपादकी आज्ञासे विभिन्न विषयोंपर वक्तृता और कीर्तन द्वारा परिक्रमाका उद्देश्य सञ्जीवित बना रहा।

५) परिक्रमाका मुख्य उद्देश्य—श्रीगुरु-वैष्णव सेवा था, न कि नाना स्थानोंपर भ्रमणकर अपना कौतुहल चरितार्थ करना। श्रीगुरु-वैष्णव सेवा परित्यागकर जड़चक्षुसे धाम दर्शन नहीं होता, इसका आदर्श श्रीमन्महाप्रभुने इस वृन्दावनमें बलभद्र भट्टाचार्य द्वारा दिखाया है।

६) अपने शरीरकी चेष्टा द्वारा धाम दर्शन नहीं होता। यदि सेवामें नियुक्त रहनेके कारण किसीकी परिक्रमाका कोई स्थान भ्रमण या दर्शन नहीं हुआ, तथापि उसी व्यक्तिकी ही यथार्थ परिक्रमा हुई। किन्तु जिन्होंने 'सेवा' छोड़कर भ्रमण और दर्शन किये हैं, उन्होंने किञ्चित् भी परिक्रमाका मर्म नहीं समझा है।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं मथुरा

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग निजजन एवं हमारे परमगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा, श्रील प्रभुपादकी पूर्वोक्तरूपमें कथित चिन्ताके निवारण एवं उनके मनोऽभीष्ट विचारोंकी पूर्ति हेतु, श्रीव्रजमण्डलमें स्थापित कुछेक प्रमुख कृतियाँ—

क) श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाका पुनः प्रवर्तन

श्रील प्रभुपादके अप्रकटके उपरान्त उनके द्वारा प्रवर्तित एवं उनकी मनोऽभीष्ट श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाका सर्वप्रथम आयोजन श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने अपने गुरु-भ्राताओंके सहित वर्ष १९४४ ई० में किया। ३० सितम्बर १९४४ ई० को प्रायः १५० यात्रियोंको लेकर हावड़ासे Train के Reserved Compartment में यात्रा आरम्भ हुई और Train २ अक्टूबरको प्रातः ७:३० बजे हाथरस जंक्शन पहुँची। वहाँसे यात्रिगण दोपहर २ बजे मथुरा स्थित आभागड़ राजाकी धर्मशालामें पहुँचे।

३ अक्टूबर, १९४४ ई० को प्रातः ७ बजे परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज एवं श्रील प्रभुपादके अन्य आश्रितजनों, यथा—श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज, श्रीमद्भक्तिहृदय वन महाराज, श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराज इत्यादिके आनुगत्यमें बैण्ड-पार्टी सहित मथुरा परिक्रमा आरम्भ हुई जिसमें श्रीआदिकेशव मन्दिर, श्रीकृष्णजन्मभूमि, भूतेश्वर महादेव, कंसटीला, विश्रामघाट आदि स्थानोंका दर्शन और परिक्रमा सम्पन्न हुई।

८ अक्टूबर तक मथुरा स्थित धर्मशालासे ही गुरु-वैष्णवोंकी हरिकथाके माध्यमसे यमुना स्थित विभिन्न घाट, दीर्घ-विष्णु, लौहवन, गोकुल, महावन, ब्रह्माण्ड-घाट, रावल इत्यादि स्थानोंका दर्शन कर ९ अक्टूबरसे परिक्रमा पार्टीके यात्रियोंने मधुवन होते हुए गोवर्धनादि परिक्रमा कालमें शिविरोंमें अवस्थान किया।

परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें द्वितीय बार व्रजमण्डल परिक्रमा १७ अक्टूबर १९५१ ई० से आरम्भ हुई। २०० यात्रियोंने Reserved bogie में हावड़ा स्टेशनसे यात्रा आरम्भकी और मथुरा स्थित हेलनगञ्जकी बड़ी धर्मशालामें वास करते हुए श्रील प्रभुपादके पदाङ्कनुसार द्वादशवनोंकी श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका शुभारम्भ किया।

ख) मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना

श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग निजजन एवं हमारे परमगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टकी पूर्ति हेतु १३ दिसम्बर १९५४ ई०, सोमवार, जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके विरह-दिवसपर मथुरा शहरके अन्तर्गत डेम्पियर पार्क और जिला हस्पतालके सम्मुख, प्रसिद्ध कंसटीला और रङ्गेश्वर महादेवके समीप, होली गेट, Imperial Bank, बड़ा डाकघर, छोटा बस-स्टेण्ड और बाजार एवं मथुरा कैण्ट रेलवे स्टेशनसे अनतिदूर एक बड़े हाल और ३५ कक्ष सम्मिलत एक दो तला विराट अट्टालिकाको संग्रह किया।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने भी १९३२ ई० में परिक्रमा पार्टीके साथ इस स्थानके निकट कंसटीला और रंगेश्वर महादेवके दर्शन किये थे। जब श्रीगोपालजीको यवनोंके भयसे गोवर्धनसे मथुरा लाया गया था, तब श्रील रूप गोस्वामीने वृन्दावनसे मथुरामें आकर एक मास तक वास किया था। उस समय श्रील रूप गोस्वामीने मथुरा-नगरकी विभिन्न कृष्णलीला स्थलियोंका दर्शन-स्पर्शन करनेके क्रममें कंसटीला और रङ्गेश्वर महादेवके भी दर्शन किये और इस मथुरा-धाममें विराजित रहकर ही 'श्रीमथुरा-माहत्म्य' नामक ग्रन्थकी रचना की। अतः श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने उक्त श्रील प्रभुपादकी विरह-तिथिपर श्रील रूप गोस्वामी एवं

श्रील प्रभुपादकी पदाङ्कित भूमि मथुरा-परिक्रमा-मार्गपर 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ'की स्थापनाकी और इस मठका नामकरण मथुराके अधिष्ठात्री देव श्रीकेशवदेवके नामपर किया।

ग) श्रील गुरुदेव—श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको 'श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ'के मठ-रक्षकके रूपमें नियुक्त करना।

घ) समग्र विश्वमें श्रील प्रभुपाद वाञ्छित श्रीगौरवाणीके प्रचार हेतु श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीको संन्यास प्रदान करना

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन आरम्भ

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे प्रतिवर्ष एक मास व्यापी श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन देश-विदेशके पारमार्थिक पथिकोंको परमार्थ अनुशीलनका सुयोग प्रदान करता है। वर्ष १९५५ ई० में २९/१०/५५ से श्रीकेशवजी श्रीगौड़ीय मठसे प्रथम श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा आरम्भ हुई जिसमें श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज इत्यादि श्रील प्रभुपादके चरणाश्रितजनोंने हरिकथा परिवेशन की। उस वर्ष १५ नवम्बरको श्रीकेशवजी मठमें श्रीअन्नकूट महोत्सव और श्रीगोवर्धन पूजाका आयोजन हुआ। मठका बड़ा हॉल भोग सामग्रीसे परिपूर्ण हो गया था। इस प्रकारका विराट अन्नकूट आयोजन मथुरावासियोंने इससे पूर्व कभी भी दर्शन नहीं किया था।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह स्थापना एवं विराट अन्नकूट महोत्सव

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ३ नवम्बर १९५६ ई०, शनिवार, श्रीगोवर्धन पूजा एवं अन्नकूट-महोत्सवके दिन परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने आराध्य श्रीश्रीगौरराधा-विनोदविहारीजीकी अर्चा-विग्रहकी सेवा प्रकाश करके अपने अनुगतजनों और जगत्वासियोंको सेवा सुयोग प्रदान किया था। श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठाका उल्लेख प्राचीन पत्रिकामें इस प्रकार प्राप्त होता है—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाका महोत्सव विशेष समारोह सहित अनुष्ठित हुआ था। श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीरसराज व्रजवासी प्रभुकी सहयोगितासे प्रतिष्ठाका आनुष्ठानिक अभिषेक और अर्चन आरम्भ किया गया था। श्रीमद्भक्तिकुशल नरसिंह महाराज, श्रीमद्भक्तिदेशिक आचार्य महाराज, श्रीमद्परमार्थी महाराज और श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने आनुष्ठानिक कार्य किये थे। श्रीविग्रहोंको गर्भ मन्दिरमें ले जाकर श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने स्वयं प्राण-प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न किया था और "राधा-चिन्ता-निवेशेण यस्य कान्तिर विलोपिता, श्री-कृष्ण-चरणम् वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम्" श्लोकका उच्चारण करके श्रीराधा-विनोदविहारीजीकी श्वेत-शैल मूर्तिका तत्त्व-सिद्धान्त ज्ञापन किया। उस समय अनेकानेक भक्तोंके श्रीमुखसे यह भावना प्रकटित हुई थी कि—श्रीविग्रहोंके दर्शन इतने मधुर और कमनीय हैं, जिससे प्रतीत हो रहा है कि आश्रय विग्रहके अनुपम प्रेमसे आकृष्ट होकर ही मानो उन्होंने प्रेममय तनु प्रकाश किया हो। श्रीमन्दिरके सम्मुख हॉलमें श्रीगिरिराजके अन्नकूटकी प्रचुर सामग्री रखकर श्रीविग्रहोंको निवेदित की गयी थी। मथुरानगरके कालेजके प्रोफेसर, स्कूल शिक्षक, वकील, विद्वत-मण्डलीने अनुष्ठानमें योगदान कर श्रील परमगुरुदेवसे धर्मालोचना श्रवण, श्रीविग्रहोंका दर्शन और विचित्र महाप्रसाद सेवनकर आनन्द प्रकाश किया था।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका जन्माष्टमी एवं राधाष्टमी तिथियोंके पालन हेतु श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें आगमन

वर्ष १९५९ ई० में परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज जन्माष्टमीसे एक सप्ताह पूर्व मथुरा धामस्थ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पधारे थे। उन्होंने कुछ दिन वहाँ रहकर मठ सेवकोंको सेवामें विशेष उत्साहित किया एवं जन्माष्टमी दिवसपर एक विराट सभाका आयोजन किया। इस सभामें परमगुरुदेवने श्रीकृष्णके परमतत्त्वके सम्बन्धमें अन्यान्य भगवदावतारोंके साथ तुलनामूलक विचारयुक्त एक सारगर्भित वक्तृता प्रदान की थी। अगले दिन श्रीनन्दोत्सवपर स्थानीय बहुतसे व्यक्तियोंको विविध प्रकारका महाप्रसाद वितरण किया गया था।

उसी १९५९ ई० में श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें अनुष्ठित श्रीराधाष्टमी तिथिपर आयोजित सभामें श्रील परम गुरुदेवने कहा था, "व्रजमण्डलमें किसी-किसी स्थानपर श्रीराधाष्टमी-व्रतके दिन कोई-कोई लोग उपवास करते हैं। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें इस दिन कीर्तन-महोत्सव द्वारा श्रीराधाष्टमी-व्रत पालित हुआ है, किन्तु उपवास प्रथाका अनुवर्त्तन नहीं किया गया। कारण, शक्ति-तत्त्वके आविर्भाव-तिरोभावपर उपवासकी व्यवस्थाको श्रीहरिभक्तिविलासने अनुमोदन नहीं किया है। यद्यपि लोकाचार अनुसार सात सतियोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमती राधारानीकी आविर्भाव तिथिपर महिला भक्तोंमें उपवासका प्रचलन देखा जाता है, किन्तु एकान्तिक वैष्णवोंके लिए उस दिन उपवासकी आवश्यकता नहीं है।"

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका संन्यास

उसी वर्ष १७ सितम्बर १९५९ ई० को विश्वरूप-महोत्सव पूर्णिमा-तिथिको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ही परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने, हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके पुनः पुनः अनुरोध और आग्रहपर, श्रील प्रभुपाद चरणाश्रित अपने गुरुभ्राता एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक सदस्योंमें-से एक श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुको एवं श्रीसनातन प्रभुको संन्यास मन्त्र एवं वेश प्रदान किया। संन्यासके उपरान्त इनके नाम हुए क्रमशः श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज। उस संन्यास अनुष्ठानका पुरोहित्य हमारे गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने किया था। परवर्ती कालमें श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने

ISKCON की स्थापनाकर सम्पूर्ण विश्वमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी एवं श्रीनाम-संकीर्तनका प्रचार किया।

श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका विभिन्न वर्षोंमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें आगमन

वर्ष १९६६ ई० में परमगुरुदेवने एक माससे अधिक समय तक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ही अवस्थान किया था। स्थानीय उच्चशिक्षित व्यक्ति प्रतिदिन उनके निकट हरिकथा श्रवण करनेके लिए आते।

२४ अक्टूबर १९६६ ई०को श्रीभागवत-पत्रिकाके प्रचार-सम्पादक श्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराजके स्वधाम गमन करनेपर परम गुरुदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें आयोजित विरहसभामें कहा—"अपनी सन्तानके विच्छेदपर किस प्रकारका शोक होता है उसका मुझे अनुभव नहीं है, क्योंकि मैं आकुमार ब्रह्मचारी हूँ। किन्तु शिष्यके लिए किस प्रकारकी विरह वेदना होती है, इसका मुझे पूर्णरूपसे अनुभव हो रहा है। श्रीमान् जगबन्धु, श्रीमान् अनङ्गमोहन एवं श्रीमान गोवर्धनके वियोगके बाद यह मेरा चतुर्थ त्यागी शिष्यका वियोग है। भिक्षु महाराजकी अगाध गुरुनिष्ठा आदर्शस्थानीय थी। वह वैकुण्ठ गया है, उसने श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें स्थान प्राप्त किया है।" उस वर्ष मथुरा-धाममें श्रीगौर-वाणीका प्लावनकर दामोदर-व्रतकी समाप्तिपर लखनऊ और काशी होते हुए परमगुरुदेवने श्रीनवद्वीप-धामके लिए शुभ विजय यात्रा की।

वर्ष १९६७ ई० के कार्तिक मासमें भी परमगुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उपस्थित थे। उसी अवधिमें २३ अक्टूबर १९६७ ई० को श्रील प्रभुपादके कृपापात्र श्रीगौड़ीय-पत्रिकाके प्रचार सम्पादक श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराजके अप्रकट होनेपर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें आयोजित विरहसभामें परम गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोवामी महाराजने दुख प्रकाश करते हुए कहा, "श्रील नारसिंह महाराज मेरे दायें हस्त स्वरूप थे, आज मैं अङ्गहीन हो गया हूँ।"

३ नवम्बर १९६७ ई० को श्रील प्रभुपादके अनुग्रहीत पार्षद श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजने नित्यलीलामें प्रवेश किया। वे काय-मन-वाक्यसे श्रील प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवामें नियुक्त थे और एक निर्भीक वक्ता और आचारवान प्रचारक थे। उन्होंने श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठकी स्थापनाकी थी। जब श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजके अप्रकट होनेका संवाद मथुरा मठमें विराजमान परमगुरुदेवके निकट पहुँचा, तब अस्वस्थ एवं शय्याशायी अवस्थामें विरह-कातर होकर उन्होंने कहा, "हाय श्रील गिरि महाराज! श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज मुझे असहाय करके चले गये।" श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठमें श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजकी समाधि अनुष्ठानके बाद ९ नवम्बर १९६७ ई० को परम गुरुदेवने उनके उद्देश्यसे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें एक विरहसभाका आयोजन किया जिसमें सब वक्ताओंके आर्ति निवेदनके उपरान्त परम गुरुदेवने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे विरह जनित रुद्ध कण्ठसे बोलते हुए कहा—"मैं जब वेदान्त समितिकी स्थापनाके लिए प्रयासशील हुआ था, उस प्रयासमें श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज एक प्रमुख प्रेरणादाता थे। उन्होंने बुद्धि, अर्थ आदि की सहायता द्वारा मुझे श्रीभक्तिसिद्धान्त वाणीके आचार-प्रचारमें सहायता—सहानुभूति द्वारा अपने परम दरदी होनेका परिचय दिया है। उनके अभावमें हृदयमें जो वेदनाका अनुभव कर रहा हूँ, उसे शब्दोंमें कहनेकी भाषाको मैं खोज नहीं पा रहा हूँ।"

इस प्रकार हमारे परमगुरुदेवका अनेक बार श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें आगमन तथा बहुत-बहुत दिनों तक वास हुआ। जब भी परमगुरुदेव मथुरा आते, तब हमारे परमाराध्य श्रील गुरुदेव विभिन्न भक्तोंके साथ संकीर्तन करते हुए पुष्प मालाओंके साथ उनका तथा उनके परिकरोंका अत्यधिक आनन्द एवं उत्साहपूर्वक स्टेशनपर स्वागत करते तथा उन्हें मोटर गाड़ी (car) के माध्यमसे मठ लाते तथा अपने प्राणों सहित उनकी सेवा करके स्वयंको धन्यातिधन्य करते।

श्रील गुरुदेव एवं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग निजजन हमारे परमगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने वर्ष १९५४ ई० में श्रीमथुरा-धाममें श्रील प्रभुपादके वर्ष १९३२ ई० में परिक्रमा-कालीन वास-स्थान Dampier Nagar स्थित 'श्रीबलदेव विलास भवन'से बहुत निकट ही जवाहर हाटमें एक धर्मशालाका संग्रहकर वहाँपर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापनाकर उसका दायित्व हमारे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको देकर उन्हें मठ रक्षक बनाया तथा मथुरा-व्रजक्षेत्रमें हिन्दी-भाषामें श्रीमन्महाप्रभु विशेषकर श्रीरूपानुग विचारधाराको प्रचार-प्रसार करनेका सेवा भार प्रदानकर उनके माध्यमसे श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण किया।

इस स्थानसे हमारे परमगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेके उद्देश्यसे समग्र पश्चिम और उत्तर भारतके प्रदेशोंमें धर्मके असदाचारका विरोध एवं श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचारित-प्रचारित विशुद्ध-भक्तिधर्मके प्रचारका सङ्कल्प लिया। यहींसे ही श्रील परमगुरुदेवने पारमार्थिक हिन्दी मासिक 'श्रीभागवत-पत्रिका' का प्रकाशन आरम्भ कराया। उन्होंने श्रील गुरुदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजको इस हिन्दी 'श्रीभागवत-पत्रिका' के सम्पादकका सेवा-दायित्व सौंपा। श्रीपत्रिकाकी भाव-भाषा और सुसिद्धान्तयुक्त विचारधारा अल्पकालमें ही मथुराके शिक्षित एवं विद्वतजनोंमें विशेष आदरणीय हो गयी। गौड़ीय-वैष्णवोंके भक्तिधर्मकी दार्शनिक विचारधाराकी सर्वश्रेष्ठता 'श्रीभागवत-पत्रिका' के द्वारा परिज्ञात होकर बहुतसे लोग इसकी भूरी प्रशंसा करने लगे। इसके अतिरिक्त श्रील परमगुरुदेवने श्रील गुरुदेवको गौड़ीय-आचार्यों विशेषकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील

रूप गोस्वामी आदिकी रचनाओंको हिन्दी भाषामें अनुवाद करनेका आदेश-निर्देश भी दिया।

अपने श्रील गुरुपादपद्म द्वारा प्रदत्त इस दायित्वको बहुत ही सुष्ठु एवं निपुणता सहित निर्वाह करते हुए श्रील गुरुदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें वास करते हुए बहुत परिश्रमसे मथुरा नगरके घर-घरमें प्रचारकार्य—कीर्त्तन-हरिकथा करते हुए मथुराके विद्वतजनों, वहाँ वास करनेवाले अन्य-सम्प्रदायोंके वैष्णवों, सामान्य नागरिकों, महिलाओं एवं बच्चोंको यथायथ आदर-स्नेह-प्रीतिके कौशलसे उन लोगोंका गौड़ीय-रूपानुग विचारधारासे क्रमशः परिचय कराया, उस विचारधारामें प्रबोधित किया एवं उसकी तुलनात्मक श्रेष्ठताको स्थापितकर उसमें प्रवेश करनेके लिए अपनी अनुपम हरिकथाकी अजस्र धाराओंमें स्नान कराते हुए श्रीरूपानुग विचारधारा और भजन-पद्धतिके प्रति लोभ जाग्रत करानेका अपूर्व उद्यम प्रदर्शित किया।

श्रील गुरुदेवने मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें वास करते हुए अपने श्रीगुरुदेवकी कृपासे प्रचुररूपमें कार्ष्ण-अनुशीलन किया, अर्थात श्रीकृष्णके परमभक्तोंकी अत्यधिक निकटसे सेवा की, उनके मुख-निःसृत हरिकथाको श्रवण किया, उनके आदर्श और भजनकी परिपाटीका दर्शन किया, उनका आनुगत्य किया तथा उनके साथ कथोपकथन करके

बहुतसे गूढ़-अतिगूढ़ सिद्धान्तोंका आस्वादन किया। श्रील प्रभुपादके अनेकानेक निजजन, यथा—श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज, श्रील भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज, श्रील भक्तिप्रपन्न दामोदर महाराज, श्रील भक्तिभूदैव श्रौती गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिजीवन जनार्दन गोस्वामी महाराज आदि जब भी मथुरा-मण्डलमें आगमन करते थे तो वे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें अवश्य पधारते थे एवं कुछ काल तक वहाँ वास भी करते थे। उन रागानुगजनोंके सङ्ग एवं सेवाके सौभाग्यको वरणकर श्रील गुरुदेवने कार्ष्ण-अनुशीलन करते हुए कृष्णानुशीलन किया। पुनः अपने अन्तःस्थित देह द्वारा कृष्णके रागात्मिक परिकरों विशेषकर व्रजदेवियोंकी कथाओंमें, उनकी मधुर सेवाओंमें अभिरमण करते हुए-'**सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि। तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥** (भ. र. सि. १/२/२९५)',-इस प्रकारसे भी श्रील गुरुदेवने कार्ष्ण-अनुशीलनके माध्यमसे कृष्णानुशीलनका एक अपूर्व आदर्श प्रस्तुत किया। श्रीमथुरा धाममें विराजमान रहकर अपने परमाराध्य गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं परमगुरुदेव श्रील प्रभुपाद तथा गौड़ीय-रूपानुग आचार्योंकी वाणीको अपने जीवनमें सर्वाङ्गीन रूपसे पालन करते हुए, श्रील गुरुदेवने उन विचारोंमें प्रवेशकर उनमें प्रतिष्ठित होकर जगत्वासियोंको अपने आचरणके सहित उस श्रीरूपानुग-विचारधारा अर्थात् अनुकूल कृष्णानुशीलनकी वृत्तिका प्रचार करके अभूतपूर्व रूपसे गौड़ीय सम्प्रदायकी सेवा की।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें विराजित रहते हुए श्रील गुरुदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने अपने भजन-आदर्श, आचार-प्रचार एवं सेवाओंके माध्यमसे मथुरा-मण्डल, उत्तर-भारत एवं विदेशोंमें श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाओं—गौरवाणी और श्रीकृष्ण-लीलाओंका अपूर्व पद्धतिसे परिवेशन किया। इस प्रकारसे व्रजमण्डलमें गौड़ीय-रूपानुग सम्प्रदायके जिन उपरोक्त अभावोंके विषयमें श्रील प्रभुपादने चिन्ता व्यक्त की था, उनके निवारणकी निम्नलिखित चेष्टाओंके द्वारा श्रील गुरुदेवने अपने गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोवामी महाराज और परमगुरुदेव श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको सम्पादित करके गौड़ीय-रूपानुग सम्प्रदायके गौरवको वर्द्धित किया, यथा—

- श्रील गुरुदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विराजित होकर भक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दु, उज्ज्वलनीलमणि, बृहद्-भागवतामृतम्, इत्यादि गौड़ीय महाजनोंके साहित्यका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करके गौड़ीय-भजन रहस्य एवं परिपाटीके वैशिष्ट्यका व्रजमण्डलमें प्रचार किया।
- श्रील गुरुदेवने श्रील सनातन गोस्वामी एवं श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी द्वारा सङ्कलित वैष्णव-स्मृति—'सत्क्रियासार-दीपिका एवं संस्कार-दीपिका' ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुतकर श्रील रूप-सनातन द्वारा परिशोधित शुद्धभक्ति सदाचार धर्मका मथुरा-मण्डलमें प्रचार किया।
- निर्विशेषवादी कंसकी वधस्थली कंसटीलाके सन्निकट श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें रहते हुए श्रील गुरुदेवने अपने श्रीगुरुपादपद्म श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा बङ्गला भाषामें रचित "मायावादकी जीवनी" ग्रन्थका हिन्दी अनुवादकर उत्तर भारतमें मायावाद विचारके खण्डन एवं उसके प्रचारको स्तम्भित करनेकी सेवा की।
- भक्तिसिद्धान्तोंके विरुद्ध मतोंकी दुर्वासनायुक्त अपचेष्टाओंका 'प्रबन्ध-पञ्चकम्' आदि कृतियोंके द्वारा खण्डनकर श्रील गुरुदेवने श्रीसारस्वत-धाराके विचारोंका संरक्षणकर जीवोंका वास्तव मङ्गल करनेमें दृढ़-व्रत एवं अदम्य उत्साह प्रदर्शित किया।
- श्रील गुरुदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें वास करते हुए धर्म-अर्थ-काम और मोक्षकी अभिलाषा रूपी कामुकताकी गन्धसे रहित षड्-गोस्वामियोंकी कथाओंका प्रचुररूपमें अनुकीर्तनकर जगजीवोंको शुद्धभक्ति विशेषकर व्रजदेवियोंकी प्रेमाभक्तिका आलोक प्रदान किया।

- बृहत्-मृदङ्ग-सेवा (ग्रन्थ-प्रकाशन) में सुप्रतिष्ठित, साम्प्रदायिक विचारोंके आचार-प्रचार एवं संरक्षणमें पूर्णतः समर्पित एवं हृत्-कर्ण-रसायन कथाओंके परिवेशनमें विशेष पारङ्गत होकर श्रील गुरुदेवने अपने गुरुवर्गकी मनोऽभीष्ट सेवाएँ सम्पादित की।
- श्रीश्रीराधाकृष्ण एवं श्रीमन्महाप्रभुकी लीला-स्थलियोंकी महिमा-ज्ञापन हेतु श्रीसारस्वत-धाराके अनुगमनकारी होकर श्रील गुरुदेव प्रतिवर्ष श्रीव्रजमण्डल एवं श्रीनवद्वीप-धाम परिक्रमाओंके अमोघ आयोजक एवं प्रशस्त सेनापति रहे। विशेषकर मथुरावासियोंको श्रीनवद्वीप-धाम-परिक्रमामें योगदान करनेका सुयोग प्रदानकर वे उन लोगोंको कलिकालमें गौरनाम, गौरधाम एवं गौरकामकी—श्रीमन्महाप्रभुके अवदान वैशिष्ट्य, महिमा और शिक्षाओंसे अभिज्ञ करानेवाले कुशल परिवेशक थे।
- श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे वैष्णव-स्मृति श्रीहरिभक्तिविलासके अनुसार प्रतिवर्ष हिन्दी-भाषामें वैष्णव-व्रतोत्सव-तालिका प्रकाशित करके मथुरा-मण्डलमें शुद्ध-एकादशी और शुद्ध-वैष्णव-व्रतोत्सवोंका प्रवर्तन किया।
- श्रील प्रभुपादके मथुरावास कालका अनुगमन करते हुए सर्वोपकार हेतु मथुरा-नगरीमें कृष्णनाम सङ्कीर्तनका प्रचार; विशेषकर श्रीजन्माष्टमीके

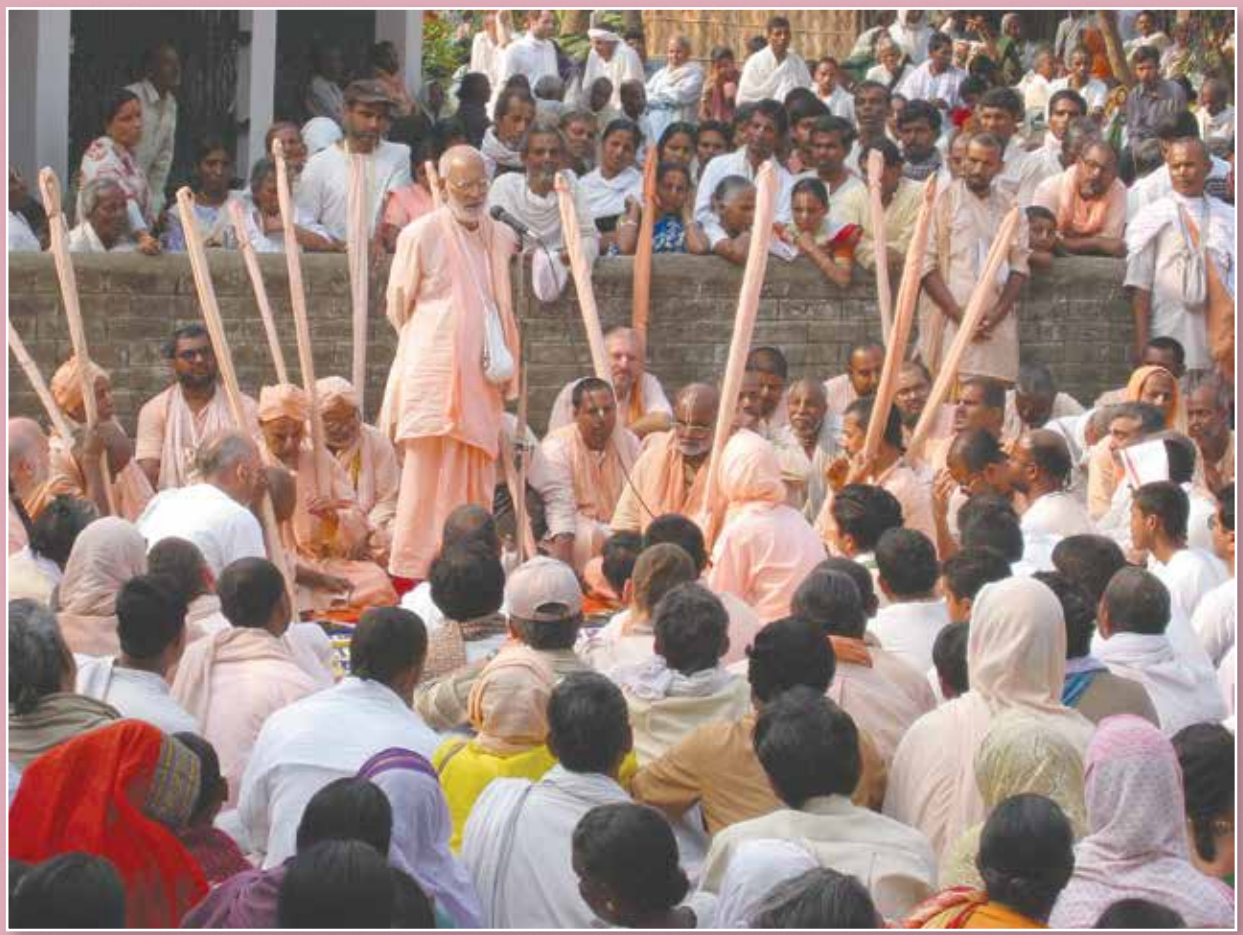

अधिवास दिवसपर दीर्घ शोभा-यात्रामें रथारूढ़ होकर अपनी स्नेहाशीष वर्षणकारी लीलाके द्वारा नगर-सङ्कीर्तनकी तुमुल (उच्च) ध्वनिसे जनगणमें कृष्ण-चेतना अनुप्राणितकारी थे।

- श्रीचैतन्य-जिज्ञासा एवं श्रीचैतन्य-सेवोन्मुख वृत्तिके उद्बोधनार्थ श्रीचैतन्य-पदाङ्कित भूमिपर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुराके अनुपम परिव्राजकाचार्य सेवायत थे।
- गौड़ीय-रूपानुग-सारस्वत विचारधारामें सुप्रतिष्ठित एवं विषय-विग्रहकी सेवासे अधिक आश्रय-विग्रहकी सेवामें ही रस-प्रकाष्ठाके प्रकाशक होकर, श्रील गुरुदेवने सर्वदा राधा-दास्यमें विभावित मतिसे समन्वित, स्वभक्ति 'श्री' (मञ्जरी-भाव) से सम्पुटित एवं राधा-विरही-कृष्णको ही हृदय-प्रकोष्ठमें रखनेसे सञ्जीवित रहनेका भजन-आदर्श प्रदर्शित किया। वे अपने चरणाश्रितजनोंके लिए रसिकशेखर श्रीकृष्ण एवं महाभावस्वरूप श्रीमती राधिकाकी नित्यलीला-भूमि, पारकीय-रससे आप्लावित व्रज-गोकुलके अतिरिक्त अन्य किसी भी गतिका विचार न करनेवाले सारग्राही शिरोमणि थे।
- श्रील गुरुदेवने श्रील रूप-सनातन गोस्वामियोंके अनुगत गौड़ीय-रूपानुग-रसोपासनाका संरक्षण, आचार और प्रचार करने हेतु श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठकी स्थापनाकर वहाँ प्रतिवर्ष श्रील रूप गोस्वामीके विरह-महोत्सव एवं श्रीश्रीराधाकृष्णके झूलनोत्सवपर त्रि-दिवसीय विद्वतगोष्ठीका आयोजन आरम्भ किया। इस युग्म-समारोहके अवसरपर वे श्रील रूप गोस्वामीकी महिमा, शिक्षाओं एवं अवदान वैशिष्ट्योंके साथ-साथ रसोप्लावित निगूढ़मय झूलनोत्सवका व्रज-रीति, परमहंस-गीति एवं रसिक-नीति सहित कुशलतापूर्वक रहस्योद्घाटन करते थे।

- श्रील गुरुदेव सभी जीवोंके गुणोंका आदर करनेवाले परम पारखी तथा उनके गुणोंको भगवान्‌की सेवामेंमें लगानेमें अत्यधिक निपुण थे। वे भागवतीय *'अशुल्क दासिका'* विचारसे साधक-जीवोंको श्रीविग्रहके रन्धन-श्रृंगारादि सेवाओंमें लगाकर उनकी सेवोन्मुखवृत्तिके प्रबोधन द्वारा ही मठ-मिशनकी सेवाओंको करानेवाले थे। सेवाका दायित्व ग्रहणकारी जनोंसे प्रीतिकी रीतिका ही सम्बन्ध रखते, किसीको शुल्क देकर मठ-मिशनकी सेवा करानेका कोई क्रम नहीं था।
- निभृत-निकुञ्ज लीलामें युगलके विरहतापको दूर करने हेतु उनका मिलन करानेवाले सर्वश्रेष्ठ-सेवागुणमें अतिदक्ष, श्रीहरि एवं उनके भक्तोंके

यशोगानमें सदैव तत्पर, साधुसेवा और समस्त प्राणियोंपर दया करनेवाले।

- श्रील गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके विश्वस्तरीय प्रचार एवं मिशनके आजीवन शुभ-चिन्तक एवं विशिष्ट सहायक और संरक्षक थे।
- श्रील गुरुदेवने अपने शिक्षा गुरु—श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजकी इच्छा और अनुरोधपर वृन्दावन स्थित इस्कॉन मन्दिरके प्राङ्गणमें उनकी समाधि-सेवाका दायित्व निभाया।

- श्रील स्वामी महाराज द्वारा सेवित श्रीमन्महाप्रभुके विग्रहकी सेवा आज भी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें हो रही है।
- इसके अतिरिक्त श्रील गुरुदेवने श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके अन्तिम आदेशको हृदयङ्गम करते हुए उनके शिष्योंके मार्गदर्शनका दायित्व स्वीकार किया। भक्तिमार्गमें उनके पालन-पोषणका वचन देकर श्रील गुरुदेवने उनकी भक्तियात्राको सुदृढ़ करने और उन्हें भक्तिरसमें अग्रसर करानेकी चेष्टाओंके द्वारा अपने शिक्षा-गुरुकी इच्छाओंको यथासम्भव पूर्णकर गुरु-परम्पराके प्रति अद्वितीय समर्पणको प्रदर्शित किया।

- श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् उनके पूर्व आश्रमके पारिवारिक जनोंने उनके द्वारा स्थापित संस्था, अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ (ISKCON) एवं उसकी समस्त सम्पत्तिपर अधिकार जमानेकी कुचेष्टा की। ऐसे संकटपूर्ण समयमें श्रील गुरुदेवने अनेक बार मुम्बई न्यायालयमें उपस्थित होकर सत्य प्रस्तुत किया। उनके निर्भीक एवं प्रमाणिक साक्ष्यके परिणामस्वरूप ISKCON को इस अनुचित अधिकार-हस्तांतरणसे संरक्षित किया गया।
- वर्ष १९९० ई० दशकके आरम्भिक वर्षोंमें इस्कॉन संस्थाके कुछ GBC एवं वरिष्ठ सदस्य नियमित रूपसे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रील गुरुदेवके निकट गौड़ीय-ग्रन्थोंके अध्ययनके लिए आते थे। श्रील गुरुदेवने उनको अपने भजनका बहुमूल्य समय देकर व्यक्तिगत रूपसे विशेष अध्यापन द्वारा विभिन्न गौड़ीय-ग्रन्थों, जैसे ब्रह्म-संहिता, जैव-धर्म, माधुर्य-कादम्बिनी,

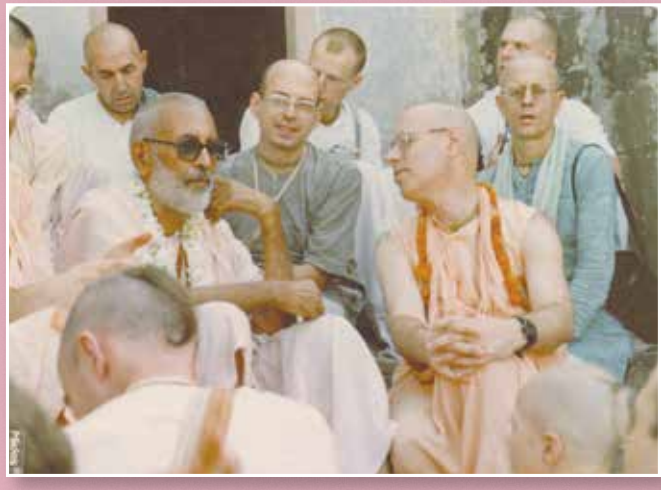

श्रीरासपञ्चाध्यायी इत्यादिके गूढ़ विचारोंसे अवगत कराकर उनको गौड़ीय विचारोंसे अभिज्ञ किया।

- श्रील गुरुदेवको उनके गुरुदेव श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी द्वारा आशीर्वाद रूपमें बहुत-से बहुमूल्य ग्रन्थ प्राप्त हुए, जो परमगुरुदेवके व्यक्तिगत ग्रन्थ थे। इसके अतिरिक्त श्रील गुरुदेवकी ग्रन्थानुशीलन वृत्तिको देखकर श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके कुछ अन्य परिकरोंने भी कुछ प्राचीन ग्रन्थ आशीर्वाद रूपमें उनको प्रदान किये थे। इन्हीं ग्रन्थोंको श्रील गुरुदेवने मथुरा स्थित अपने भजनकक्षके ग्रन्थालयमें बहुत आदर एवं यत्न सहित रखा। श्रील गुरुदेवका अधिकांश समय इन ग्रन्थोंके अनुशीलनमें ही व्यतीत होता था। उनकी मथुरा स्थित भजन-कुटी एक ग्रन्थरूपी कुञ्जकी भाँति प्रतीत होती थी, जिसमें चारों ओर ग्रन्थोंकी अलमारियाँ थीं। श्रील गुरुदेव उस ग्रन्थरूपी कुञ्ज अर्थात् अप्राकृत वाणी-कुञ्जमें विराजित होकर भजन-स्मरण परायण रहते थे। श्रील गुरुदेवकी विशेष शुभेच्छा और आशीर्वादसे उनके भजनकक्षके ग्रन्थालयमें-से बङ्गला और हिन्दीके ग्रन्थोंके साथ-साथ बङ्गला श्रीगौड़ीय-पत्रिकाके ५५ वर्षों और हिन्दी श्रीभागवत-पत्रिकाके प्रायः ४५ वर्षोंके सभी अङ्कोंको श्रील गुरुदेवके शतवार्षिक-आविर्भाव-महोत्सवके उपलक्ष्यमें वर्ष २०२१ ई० में scanning कर PDF प्रारूपमें purebhakti.com पर सभीके लिए उपलब्ध कराया गया है। यह श्रील गुरुदेवका वर्तमान और भविष्यके सभी साधकोंके लिए विशेष अवदान है।
- श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने अपने जीवन कालमें दो प्रकार की लीलाओंको प्रदर्शित किया, यथा—स्वभजन-लीला और विभजन-लीला। स्वभजन-लीला अर्थात उनका व्यक्तिगत भजन और विभजन अर्थात अन्य भक्तिपिपासु साधकोंको विभिन्न साधन-चेष्टाओं एवं मठ-मन्दिरोंकी रन्धन-श्रृंगारादि सेवाओं, ग्रन्थ-प्रकाशन, व्रजमण्डल-गौरमण्डल परिक्रमाओं और अन्य प्रचार कार्योंमें नियुक्त करना। स्वभजन-लीलाके अन्तर्गत सर्वप्रथम श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादने शत् कोटि नामयज्ञ आरम्भ किया जिसमें वे भगवन्नामका जप, कीर्तन और स्मरण करते हुए सर्वतोभावेन गोवर्धनके अन्तर्गत सर्वदा श्रीराधाकुण्डके तट पर ही वास करते थे। श्रील प्रभुपादने मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठ, जिसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने संग्रहीतकर उनके संरक्षणमें दिया था, वहाँ ब्रजपत्तनकी स्थापनाकर उस स्थानको अभिन्नव्रजके रूपमें दर्शन करते हुए गिरिराज-गोवर्धन, राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड आदि लीलास्थलियोंके परिवेशको प्रकाशित किया। इसके अतिरिक्त श्रील प्रभुपादने श्रीजगन्नाथपुरी स्थित चटकपर्वतको अभिन्न गोवर्धन जानकर वहाँ शतकोटि नामभजनका आदर्श प्रदर्शित किया। श्रीब्रजमण्डलमें आकर भी उन्होंने राधाकुण्डके तटको ही अपनी अभीष्ट भजन-स्थली जानकर वहाँ श्रीकुञ्जबिहारी गौड़ीय मठकी स्थापना कर स्वभजन-आदर्श प्रस्तुत करते हुए दिखाया कि श्रीराधाकुण्डतट ही गौड़ीय-रूपानुगजनोंकी भजन-पराकाष्ठाका अभीष्ट स्थान है। इस प्रकारसे श्रील प्रभुपाद कहीं भी रहे हों, उन्होंने सर्वतोभावेन राधाकुण्डके तटपर ही अवस्थानकर नामभजनपूर्वक सेवा की—यही उनका स्वभजन वैशिष्ट्य था। श्रील प्रभुपादके इन्हीं भजन-आदर्शोंका अपने श्रीगुरुपादपद्मके आनुगत्यमें अनुगमन करते हुए हमारे श्रील गुरुदेवने मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें स्थित अपनी भजन-कुटीकी दीवारोंपर राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, गिरीराज-गोवर्धनके बड़े-बड़े चित्रपटोंको लगवाया था। इस प्रकारसे श्रील गुरुदेवने मथुरा स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विराजित रहकर भी श्रील प्रभुपादकी स्वभजन-लीलाका अनुगमन करते हुए भावनासे सर्वदा राधाकुण्डके तटपर ही अवस्थान किया। इसरूपमें श्रील गुरुदेवने सारस्वत-धारानुवर्त्ति जनोंके लिए

राधाकुण्ड-वासका सर्वश्रेष्ठ भजन-आदर्श प्रस्तुत करके गौड़ीय-रूपानुगजनोंकी भजन-पराकाष्ठाका वैशिष्टय प्रदर्शित किया।

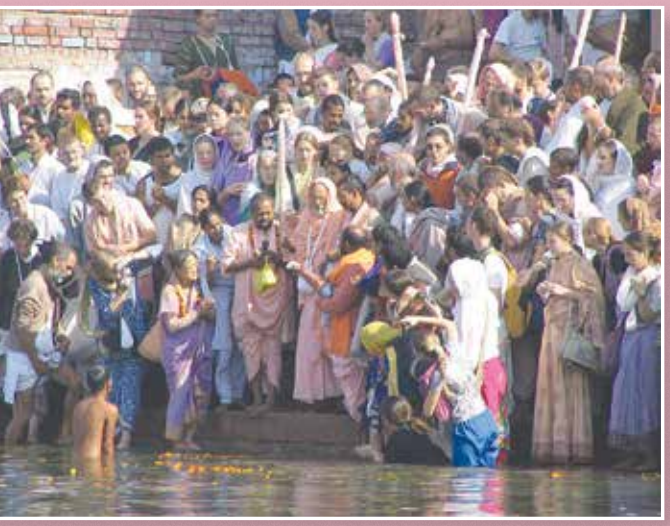

- श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें वास करते हुए श्रील गुरुदेवने श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन; श्रीदुर्वासा-महर्षि आश्रम, मथुरा; श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ, गोवर्धन; श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, नवद्वीप; श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ, दिल्ली आदि मठोंका निर्माण करवाया एवं व्रजकी विभिन्न लीला-स्थलियों, यथा—भाण्डीरवट, जावट, उद्धव-क्यारी (विशाखा-कुण्ड), कालिया-दह, ब्रह्म-कुण्ड आदिका जीर्णोद्धार करवाया।
- श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें रहते हुए श्रील गुरुदेवने अपने भजन-नैपुण्य एवं विचार कौशल द्वारा मथुरा एवं व्रजके अन्यान्य सम्प्रदायोंके वैष्णवों एवं विद्वानोंसे मधुर-सम्बन्ध रखते हुए उनको आमन्त्रितकर 'श्रीमद्भागवतम्' के विभिन्न विषयोंपर विद्वत्त-सभाओं एवं गोष्ठियोंका आयोजन किया। इन गोष्ठियोंके माध्यमसे गौड़ीय-वैष्णव आचार्यों और षड्गोस्वामियोंकी श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंपर रचित टीकाओंके आधारपर कृष्णका गोकुलमें जन्म और मथुरामें आविर्भाव (नन्द तनुज किंकर), व्रजदेवियोंके पारकीय भावकी उपासना (पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा) आदि गौड़ीय-सम्प्रदायके विचार, उपासना-पद्धति एवं भजन-वैशिष्ट्यसे उन सबको अवगत कराकर मथुरा-मण्डलमें श्रीगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायकी श्रेष्ठता स्थापितकर सम्प्रदाय-गौरवको वर्द्धित किया।

- श्रीराधाष्टमीपर 'चाव'की अद्भुत परिपाटीका प्रवर्त्तनकर वे मथुरा-नगरीके जनमानसमें अद्भुत व्रज-रीतिका उल्लास सञ्चार करनेवाले थे।
- लौकिक कला एवं योग्यताओंको पारमार्थिक सौन्दर्य-शोभामें रूपान्तरित कर अद्भुत प्रबन्धन, निर्माण, रन्धन, लेखन, चित्रांकन, वाचन, प्रचारण-प्रसारण, संचयन, वितरण आदि सेवाओंमें नियुक्त करनेवाले (भौम-सेवाओंके बलसे गोलोकीय सेवा प्रदान करनेवाले) परमाद्भुत कौशलसे सम्पन्न थे।
- विदेशोंमें प्रचार करते समय अपनी उपस्थितिसे उस परिवेशमें श्रीवृन्दावन-धामकी सहज अनुभूतिवशतः वहाँके लोगोंमें भौम-वृन्दावनके दर्शनका लोभ जाग्रत करानेमें निपुण-शिरोमणि थे।
- श्रील गुरुदेवकी व्रजवासियोंसे विशेष स्नेह-प्रीति थी। प्रत्येक विदेश प्रचार यात्रासे पूर्व श्रील गुरुदेव व्रजके गणमान्य लोगों, व्रजके विद्वानों और साधारण व्रजवासियोंको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें आमन्त्रितकर उनसे व्रजभक्तिके प्रचार-प्रसारका आशीर्वाद लेते

थे। लोकप्रियता एवं सर्वपूज्यताके शिखरपर आरूढ़ इन व्रजवासियों द्वारा श्रील गुरुदेवके सफल विदेश प्रचारको देखकर व्रजमण्डलमें उन्हें सम्मानपूर्वक 'युगाचार्य' अलङ्करणसे विभूषित किया गया।

- श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज एवं श्रील गुरुदेवके अन्यान्य गुरु-भ्रातागण समय-समयपर आकर मथुरा मठमें वास करते थे।

श्रीमन्महाप्रभुके पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए सैंकडों भक्तोंके साथ मथुराके विश्राम तीर्थपर व्रजमण्डल-परिक्रमाका संकल्प लेते। महाप्रभुकी पदाङ्कित भूमि 'गौर आमार ये सब स्थाने करिले भ्रमण रङ्गे' के अनुसार व्रजमण्डल की परिक्रमा करते थे। हिन्दी-भाषामें श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमा ग्रन्थका प्रकाशन करके श्रील गुरुदेवने व्रजकी अज्ञात लीला स्थलियों और उनकी महिमाको सर्व सुलभ किया है।

- श्रील गुरुदेव प्रतिवर्ष श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमाका आयोजन करते।

- विशेषकर गुरु-पूर्णिमा, जन्माष्टमी एवं राधाष्टमीके महोत्सवोंको श्रील गुरुदेव अति उल्लासपूर्वक प्रतिवर्ष श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विराजित होकर ही पालन करते थे और उन अवसरों पर क्रमशः श्रीगुरु-तत्त्व, कृष्ण-तत्त्व, राधा-तत्त्वके विषयोंपर निगूढ़ शास्त्रीय चर्चाओंका आयोजन करते थे।
- श्रील गुरुदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे ब्रह्मचारियोंको मथुरामें सर्वत्र घर-घर द्वादशी-भिक्षा एवं मासिक भिक्षाके लिए भेजकर मथुरावासियोंका श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ एवं श्रीमन्हाप्रभुके विचारोंसे परिचित कराया। निर्धन-धनीके भेदभावसे रहित होकर वे सभीके घरोंमें जाकर कथा-कीर्तन करते थे एवं कभी-कभी रातके ११-१२ बजे भी कथा-कीर्तन करके मठमें लौटते और

मठमें आकर ही प्रसाद ग्रहण करते थे। वे सर्वथा प्रचारमूलक भिक्षाके पक्षपाती थे न कि भिक्षामूलक प्रचारके।

- श्रील गुरुदेव विपुल रूपमें श्रीगिरिराजजीकी परिक्रमा, उनके अन्नकूट-महोत्सव एवं महा-अभिषेकके आयोजन द्वारा भक्तोंकी सेवा-सौष्ठव वृत्तिको अनुभूति-सम्पन्न हर्षसे समुज्जवलित करनेवाले थे।

- वे शिक्षागुरु (दीक्षागुरुकी सेवा-शिक्षा प्रदान करने) एवं दीक्षागुरु दोनों ही भूमिकाओंके निर्वाहमें वात्सल्य भावसे ओतप्रोत श्रेष्ठ आश्रयस्वरूप थे।
- वे कार्तिक मासमें अपने गुरुपादपद्म, सतीर्थ एवं गौड़ीय-वैष्णवोंके प्रकट-अप्रकट-महोत्सवमें वाक्-पुष्पाञ्जलि द्वारा गौड़ीय-गगनके परमोद्दीप्त नक्षत्रोंके परिचय-दायक थे।
- श्रीकेशवजी गौड़ीय मठको केन्द्र करके ही श्रील गुरुदेवने देश-विदेशके विभिन्न स्थानोंपर गौर-वाणीका प्रचार-प्रसार किया।
- श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें रहते हुए अनुगतजनोंमें कृपाशक्तिका सञ्चारकर उनको गम्भीर एवं मधुर वक्तृताओंके प्रशिक्षण द्वारा योग्य बनाकर गौड़ीय-रूपानुग-सारस्वत धाराका अभिवर्द्धन किया।
- व्रजमण्डलके अन्तर्गत काम्यवनकी लीला-स्थलियोंको भू-माफियासे संरक्षण हेतु श्रील गुरुदेव सतत श्रीरमेश बाबाके अभियानके

समर्थनमें रहे और व्यक्तिगतरूपमें उनसे भेंटकर उनके अभियानको अपना यथासम्भव सहयोग दिया।

- इस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे ही श्रील गुरुदेवने श्रीवृन्दावन-धाम स्थित श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठमें अपने ब्रह्मचारियोंको भेजकर रातभरमें प्राचीरका निर्माण करवाकर श्रीविनोदवाणी गौड़ीय मठकी भूमि-का भू-माफियासे संरक्षण किया।
- श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका क्षेत्रफल छोटा होनेपर भी वहाँ विभिन्न मठों एवं संस्थाओंके भक्तोंका श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें भजन-शिक्षा हेतु वास होता था। श्रील गुरुदेव अपने परायेकी भावनाओंसे रहित होकर एक परिवारकी भाँति सबका पारमार्थिक पोषण करते थे।
- अपनी दिव्य उपस्थितिसे श्रील गुरुदेव कदाचार-अनाचारके परित्यागका सामर्थ्य प्रदानकर शुद्धभक्ति-सदाचारका पालन एवं हरिभजनके लिए उत्साहित एवं अनुप्राणित करनेवाले थे।

इति।

श्रीमथुरा-धामकी जय!
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी जय!
श्रीगौड़ीय-रूपानुग-सारस्वत-गुरु-परम्पराकी जय!

परमाराध्यतम श्रील परमगुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी की जय!!

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी की जय!!

तदीय सेवकवृन्द की जय!
गौर-प्रेमानन्दे!

प्रस्तुतिः माधवप्रिय दास एवं अमलकृष्ण दास

आधारः श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित 'श्रीव्रजमण्डल-परिक्रमा' एवं 'आचार्य केसरी—श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोवामी महाराज।' साप्ताहिक गौड़ीय वर्ष-११।

आभारः डा.(श्रीमती) मधु खण्डेलवाल, पूजा दासी एवं शचीनन्दन दास।

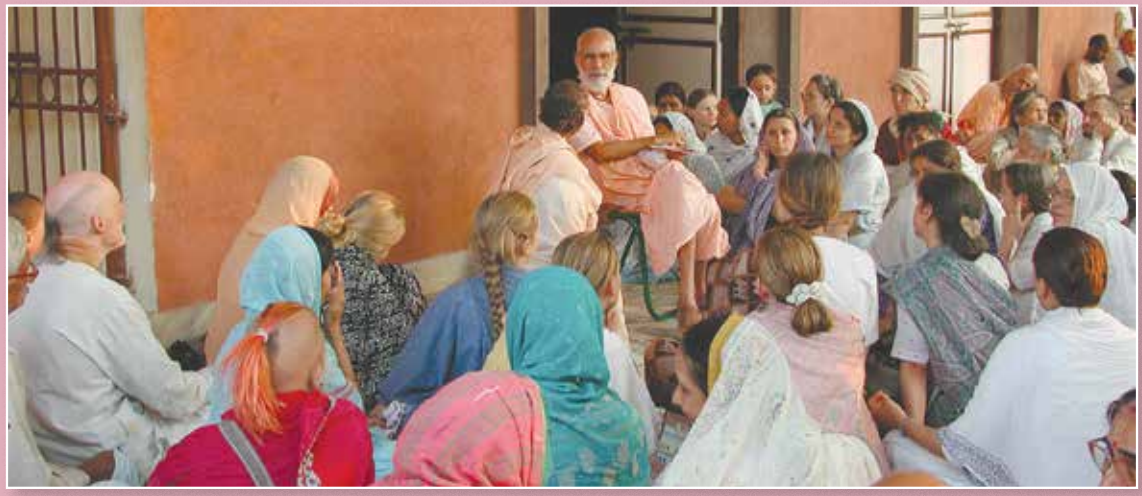

(विरह-सम्वाद)

श्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर गोस्वामी महाराज

अत्यन्त दुखके साथ अवगत कराया जा रहा है कि विगत ३१ अगस्त २०२४ ई०, शनिवार, भाद्रमास कृष्णपक्षकी त्रयोदशीको अवलम्बन करके प्रातः ३:१५ बजे हमारे सुपरिचित, निरन्तर श्रीगुरु-वैष्णवोंके सेवा-परायण, जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके पार्षद—गौड़ीय-गगनके श्रुति-स्मृति एवं न्याय प्रस्थानके विशेष टीका रचयिता—हमारे परामराध्य गुरुवर्ग नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीके चरणाश्रित एवं कृपापात्र श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन एवं मिशनके प्राक्तन आचार्य त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर गोस्वामी महाराज प्रायः ९४ वर्षकी आयुमें कोलकाता स्थित श्रीसारस्वत गौड़ीय आसनके मठमें श्रीश्रीराधादयित प्राणजूकी नित्यसेवामें प्रविष्ट हुए।

जन्म, बाल्यकाल एवं शिक्षा

श्रीश्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर गोस्वामी महाराज पश्चिम बङ्गालके हावड़ा जिलाके अन्तर्गत तैंतुल-तला स्थित कोना ग्राममें २६ अप्रैल १९३० ई०, तदानुसार वैशाख मासकी शुक्लपक्ष आमावस्या तिथिको श्रीगौर पार्षद श्रील गदाधर पण्डित, एवं श्रील शुकदेव गोस्वामीजीके शुभ आविर्भाव दिवसपर माता श्रीमती लक्ष्मीरानी घोष और पिता श्रीमनमथ घोषको उपलक्ष्य करके आविर्भूत हुए थे। अपने माता-पिताकी नौं सन्तानोंमें-से ये तृतीय सन्तान थे। माता-पिताने बालकका नाम निर्मल घोष रखा था। माता-पिता यद्यपि वैष्णव नहीं थे, तथापि भगवान्के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी। बाल्यकालसे ही निर्मल घोष अपने पिताके साथ ग्रामके सभी धर्म अनुष्ठानोंमें जाते थे एवं वहाँके भजन-कीर्तनमें विशेष रुचिपूर्वक योगदान किया करते थे। उनके बड़े भाई निताई घोष राज्य बीमा परिकल्पना ट्रस्टमें सरकारी डॉक्टर थे। दोनों भाइयोंने लीलूआ नामक स्थानपर एक Clinic खोला था, जहाँ निताई घोष रोगियोंको देखते थे एवं निर्मल घोष वहाँ Compounderके रूपमें रोगियोंको दवा आदि देते थे। १९४९ ई० में निर्मल घोषने १२वीं कक्षा उत्तीर्ण की। बाल्यकालमें वे एकान्त रूपसे पढ़ाईपर ही ध्यान देते थे। प्रतिदिन माता-पिताके चरण स्पर्श करते थे, उनकी सब बातें मानते थे। यदि पिताजी कभी डाँटते भी थे, तो वे चुपचाप सहन कर लेते थे, कोई प्रतिवाद नहीं करते थे। इस प्रकार बचपनसे ही उनका जीवन आदर्शमय था।

अपने श्रीगुरुपादपद्मके प्रथम दर्शन, उनसे हरिकथा श्रवण एवं ग्रह-त्याग

श्रीनिर्मल घोषके फूफा और बुआजी कोलकाताके बहेलामें रहते थे और दोनों श्रील प्रभुपाद पार्षद

श्रीश्रीमद्भक्तिविवेक भारती गोस्वामी महाराजके चरणाश्रित थे। उनके घरमें नियमित रूपसे कीर्तन आदि होता था। एक समय वर्ष १९५० ई०में श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज प्रचारके उद्देश्यसे श्रीनिर्मल घोषके फूफा-बुआजीके घरपर पधारे थे। निर्मल घोषकी बुआजी उनको सब समय कथा सुननेके लिए बुलाती थीं, किन्तु Clinicमें रोगियोंको देखनेमें व्यस्त रहनेके कारण वे जा नहीं पाते थे। एक बार वे अपने पिताजीके साथ बुआजीके घर गए और प्रथम बार उन्होंने श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीके दर्शन किए। तब उनको लक्ष्य करके ही श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने हरिकथा कही, कि इस जगत् की Degree तो यहीं रह जायेगी और यदि कोई व्यक्ति इस जन्ममें थोड़ी-सी भी भक्ति करता है, तो भगवान् उसे व्यर्थ नहीं जाने देते— "*नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥* (भगवद्गीता २.४९) — अगले जन्ममें उसकी भक्तिकी क्रिया वहींसे आरम्भ होगी जहाँसे उसने छोड़ी थी। किन्तु यदि इस जन्ममें कोई Doctor-Engineer बन भी जाये तो अगले जन्ममें उसे वह पढ़ाई zero से ही आरम्भ करनी पड़ेगी। श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरजीके कीर्तनके एक पदको कहा—'*जड़ विद्या जत मायार वैभव तोमर भजने बाधा। मोह जनमिया अनित्य संसारे जीवके करे गधा॥*' इस पदको सुनकर अब निर्मल घोष प्रतिदिन साइकिलपर अपने घरसे अपनी फूफीके घर हरिकथा सुननेके लिए जाने लगे। श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजसे नियमित हरिकथाको श्रवणकर वे बहुत प्रभावित हुए और फलस्वरूप उन्होंने १९५१ ई० की शिवरात्रिके दिन गृहत्याग कर दिया। तत्पश्चात निर्मल घोष कोलकाताके हाजरा रोडपर वर्ष १९४५ ई०में प्रतिष्ठित श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन एवं मिशनके मठमें श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीके निकट आकर रहने लगे। उनके माता-पिता कई बार उनको लेने भी आये, किन्तु वे अपने मठवासके निर्णयपर दृढ़ रहे। मठमें रहते हुए वे मठके सभी नियम यथा—आरती-कीर्तन, हरिकथामें उपस्थित रहते थे तथा मठकी सेवामें नियुक्त रहते थे।

दीक्षा एवं संन्यास

श्रीनिर्मल घोषकी सेवा-प्रवृतिको देखकर श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने वर्ष १९५२ ई०के वैशाख मासकी चतुर्दशी अर्थात् श्रीनृसिंह चतुर्दशीके दिन उनको हरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। दीक्षाके उपरान्त श्रीनिर्मल घोषका नाम हुआ श्रीनित्यानन्द दास ब्रह्मचारी। तदुपरान्त उनकी दायित्वपूर्ण सेवा-निष्ठा देखकर श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीने श्रीनित्यानन्द दास ब्रह्मचारीको १९५७ ई० की श्रीगौर-पूर्णिमा तिथिपर श्रीनवद्वीप धाममें संन्यास प्रदान किया। संन्यासके बाद उनका नाम हुआ श्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर महाराज।

पूज्यपाद महाराजपर उनके श्रीगुरुदेवकी शासन रूपी कृपा

ब्रह्मचारी अवस्थासे ही श्रीमद्भक्तिरञ्जन सागर महाराज (श्रीनित्यानन्द दास) अपने गुरुदेवके शासनको सहर्ष स्वीकार करते थे। एक दिन वे Balconyसे नीचे देख रहे थे। श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने जब उनको इस प्रकार देखा तो क्रोधपूर्वक उनसे कहा "नित्यानन्द, मैं अभी तुम्हारी व्यवस्था करता हूँ।" अगले ही दिन श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने पूरी Balconyमें जाली लगवा दी जिससे कि कोई भी नीचे झाँक कर न देख सके। पूज्यपाद सागर महाराजने अपने सम्पूर्ण जीवन तक अपने गुरुदेवकी इस शिक्षाका पालन किया। अपनी वृद्धावस्थामें एक समय वे अपने पुरी स्थित मठमें उपस्थित थे। एक दिन उस मठके बाहरसे एक वैष्णव शोभायात्रा निकल रही थी। पूज्यपाद महाराजने इस विषयमें अपने सेवकसे पूछा तो सेवकने बताया कि हो सकता है कि कहीं उत्सव हो उसके लिए वैष्णवगण शोभायात्रामें कीर्तन कर रहें हैं। पूज्यपाद महाराजजीकी भजनकुटी उनके

पुरी मठमें मन्दिरके प्रथम तलपर थी और उसमें एक खिड़की थी जो बाहर सड़ककी ओर खुलती थी। जब पूज्यपाद महाराजजीको ज्ञात हुआ कि वैष्णव लोग कीर्तन करते हुए जा रहे हैं, तो उन्होंने कहा–"मैं नीचे जाकर शोभायात्राके दर्शन करना चाहता हूँ।" तब सेवकने कहा–"महाराजजी! मैं यह खिड़की खोल देता हूँ, आप यहाँसे ही दर्शन कर लीजिए, यहींसे ही पूरी शोभायात्रा दिखाई देगी।" तब महाराजजीने कहा–"नहीं! मेरे गुरुदेवने ऊपरसे झाँककर देखनेके लिए मना किया है।" अपनी ९० वर्षकी वृद्धावस्थामें भी महाराजजीने अपने गुरुदेवकी आज्ञाका पालन करते हुए नीचे आकर ही शोभायात्राके दर्शन किए और सब वैष्णवोंको साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

जब वर्ष १९५७ ई०में श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने श्रीनित्यान्द ब्रह्मचारीको संन्यास प्रदान करनेकी इच्छा व्यक्त की और पूछा "नित्यानन्द! तुम मेरी आज्ञाका पालन ठीक-ठीक रूपसे कर पाओगे कि नहीं?" तब नित्यानन्द ब्रह्मचारीने न तो हाँ कहा और न ही ना कहा, और फिर सिर नीचे करके रोने लगे। कारण? वे सोचने लगे कि गुरुजी पूछ रहे हैं कि आज्ञाका पालन ठीकसे कर पाओगे या नहीं, किन्तु गुरुजीको तो आदेश देना चाहिए। अतः पूज्यपाद महाराजजी जीवनभर अपने भाग्यको कोसते थे कि मैं तो अपने गुरुदेवकी आज्ञाका पालन ठीकसे नहीं कर पाता हूँ और क्रन्दन करते थे।

धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा

एक बार श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने पूज्यपाद सागर महाराजको किसी उत्सवके लिए रसगुल्ले, फूलमाला इत्यादि लानेके लिए भेजा। तब पूज्यपाद महाराजजी बाज़ार पैदल-पैदल गए और जब सामान लेकर लौटे तो श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजी भरी सभामें उनको डाँटते हुए कहने लगे–"कहाँ गए थे, किसने भेजा था?" ऐसा कहकर बहुत डाँट लगायी। पूज्यपाद महाराजजी कुछ नहीं बोले एवं चुपचाप सुनते रहे। तब किसी भक्तने श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीसे पूछा, "महाराजजी आपने ही तो इन्हें बाज़ारसे सामान लानेके लिए भेजा था और ये तो सामान लेकर आये हैं, अतः आप इन्हें क्यों डाँट रहे हैं?" तब श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीने कहा–"मैं इसके धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा ले रहा हूँ, मैं देखना चाहता हूँ कि यह भविष्यमें लाञ्छन सहन करके भी गुरु-दायित्व निभा पायेगा कि नहीं। क्योंकि यदि यह भविष्यमें कभी मठके किसी दायित्वपूर्ण पद (आचार्य पद)पर प्रतिष्ठित होगा, तो इसमें एक आचार्यका कार्य करनेके लिए आवश्यक सहिष्णुताका गुण होना ही चाहिए।"

एक अन्य अवसरपर भी श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने पूज्यपाद सागर महाराजकी सहनशीलता की परीक्षा ली। पूज्यपाद सागर महाराजजी प्रतिदिन भिक्षा करने सुबह जाते और दोपहरको आते थे। वे एक-एक पैसेका हिसाब लिखते थे कि कितनी भिक्षा हुई और कितना खर्चा हुआ। अपने गुरुदेव श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके प्रकट रहने तक प्रतिवर्ष मठका हिसाब उन्हें देते थे। पुरी, नवद्वीप और कलकत्ता तीनों मठोंमें वार्षिक हिसाब-किताब मठके Incharge श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजको देते थे। एक समय वार्षिक हिसाब-किताब प्रस्तुत करने पर श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने पूज्यपाद सागर महाराज (तब वे ब्रह्मचारी अवस्थामें थे) को बुलाया और कहा, "नित्यानन्द! तुम चिट्ठी लिखो।" श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने पुरीके मठके Inchargeको पूज्यपाद सागर महाराज (नित्यानन्द दास)के द्वारा ही चिट्ठी लिखवाई कि आप अच्छेसे पुरी मठकी परिचालना करते हैं, किन्तु नित्यानन्द तो पैसेको इधर-उधर कर देता है। अर्थात पूज्यपाद सागर महाराज स्वयं ही अपने गुरुदेवके निर्देशानुसार अपने बारेमें लिख रहे हैं कि वे पैसेको इधर-उधर कर देते हैं, ठीकसे परिचालना नहीं कर पाते। इससे पूज्यपाद सागर महाराजकी प्रगाढ़ सहनशीलताका बोध होता है कि उन्होंने अपने गुरुदेव

द्वारा उनके प्रति ही मिथ्या अभियोग लिखनेके लिए कहनेपर भी कोई प्रतिवाद नहीं किया। इस प्रकार वे अपने श्रीगुरुदेव द्वारा ली गयी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। तब श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने स्वयं ही लिखित रूपमें पूज्यपाद सागर महाराजको भविष्यमें आचार्यके लिए मनोनीत किया था।

पूज्यपाद सागर महाराज कहा करते थे, "मठवासीको सहनशील होना होगा। कारण, जिसके स्वभावमें अपने स्वार्थकी पूर्ति हेतु जितनी अधिक अभियोग-वृत्ति (complaining tendency) रहती है, वह उतना अधिक अवैष्णव है।"

"मठवासीको सहनशील होना होगा। कारण, जिसके स्वभावमें अपने स्वार्थकी पूर्ति हेतु जितनी अधिक अभियोग-वृत्ति (complaining tendency) रहती है, वह उतना अधिक अवैष्णव है।"

श्रील गुरुदेवका आदेश पालन

श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजने पूज्यपाद सागर महाराजको कहा था कि सब समय श्रीचैतन्य-भागवतका पाठ करना। इसलिए वे सर्वदा ही चैतन्य भागवतका पाठ करते थे मानो चैतन्य भागवत ही उनका प्राण हो। उनको सम्पूर्ण चैतन्य-भागवत मुखस्थ थी। अपने अन्तिम समय तक भी वे सेवकोंको कहते थे कि चैतन्य-भागवत सुनाओ। इसके अतिरिक्त श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीने उनसे कहा था कि शरणागतिके कीर्तन किया करें, अतः पूज्यपाद सागर महाराज प्रतिदिन शरणागतिके कीर्तन करते थे।

श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके मठमें नियम था कि कोई भी उनकी आज्ञाके बिना कहीं नहीं जाता था, यहाँ तक कि पुरीमें श्रीजगन्नाथदेवके मन्दिरमें दर्शन करनेके लिए भी उनकी आज्ञाके बिना नहीं जाता था। श्रील सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजके अप्रकटके बाद यदि पूज्यपाद सागर महाराजको कहीं भी जाना होता तो वे मठके सभी वैष्णवोंसे आज्ञा लेकर ही जाते थे।

मठकी तीनों आरतियोंमें नियमपूर्वक उपस्थित रहनेका आदर्श

पूज्यपाद सागर महाराजने नियमित रूपसे प्रतिदिन मठकी तीनों आरतियोंमें उपस्थित रहनेका आदर्श प्रदर्शित किया। एक समय महाराजजी प्रातः किसी कार्यक्रममें गए और मठमें लौटकर आनेपर कलान्त होनेके कारण उनकी आँख लग गयी और वे दोपहरकी आरतीमें उपस्थित नहीं हो पाए। सेवकने भी महाराजजीको थका हुआ जानकर आरतीके समय उठाया नहीं। जब पूज्यपाद महाराजजीकी आँख खुली तो आरती हो चुकी थी और मन्दिरके पट बन्द हो गए थे। तब महाराजजीने सेवकको डाँटते हुए कहा कि तुम मेरे परम शत्रु हो, क्योंकि तुमने मुझे आरतीके पूर्व उठाया नहीं। फिर उन्होंने उस दिन यह कहकर प्रसाद ग्रहण नहीं किया कि आज मैं दोपहरकी आरती दर्शन नहीं कर पाया। तब सेवक उनको प्रसाद पानेके लिए निवेदन करते हुए कहने लगा–"महाराजजी आज आरती दर्शन नहीं किया तो क्या हुआ? आप प्रसाद पा लीजिए।" तब पूज्यपाद महाराजजीने कुछ क्रोधित होकर कहा–"क्या हुआ!! *शिव-शुक-नारद प्रेमे गद्‌गद्‌, आरती करेन ब्रह्मादि देवगण।* अरे! ब्रह्मादि देवगण भी अपने सारे कार्योंको छोड़कर प्रभुकी आरतीमें उपस्थित होते हैं। मुझे कितना काम है? बाहरके लोग भी सब काम छोड़कर आरती दर्शनमें आते हैं। हम लोग तो मठमें रहते हैं। जहाँ ललिता-विशाखा आदि सखियाँ पञ्चप्रदीप लेकर राधाकृष्णकी आरती कर रही हैं, और जहाँ हमारे गुरुवर्गकी भावना है, वहाँ हम उपस्थित नहीं हो?" उस दिन महाराजजीने दोपहरको प्रसाद नहीं पाया।

संध्या आरती दर्शन करके ही प्रसाद पाया। महाराजजी कहते थे कि एक तो वृद्धावस्थाके कारण मैं ठीकसे सेवा नहीं कर पाता हूँ, उसपर भी आरती दर्शन नहीं करूँगा, तो आत्मघाती हो जाऊँगा। एक बार पूज्यपाद सागर महाराजजी washroom में गिर गए और उनके शरीरमें ३ जगह fracture हुआ। अपनी ऐसी शारीरिक असुविधामें भी वे श्रीविग्रहकी आरती दर्शनके लिये गये।

दैन्यभाव

एक समय एक भक्त पूज्यपाद सागर महाराजजीके गुरुभाईके साथ उनके (पूज्यपाद महाराजजीके) दर्शन करने गए। तब पूज्यपाद महाराजजीके गुरुभाईने उस भक्तका परिचय कराते हुए महाराजजीसे कहा, "महाराजजी! यह भक्त आपके दर्शन करने आया है।" जब उस भक्तने पूज्यपाद सागर महाराजजीको प्रणाम किया तो पूज्यपाद महाराजजीने भी उसे प्रणाम किया। फिर पूज्यपाद महाराजजी कहने लगे, "*जगाइ-मधाइ हैते मुञि से पापिष्ठ। पुरीषेर कीट हैते मुञि से लघिष्ठ॥ मोर नाम शुने येइ, तार पुण्य क्षय। मोर नाम लय येइ, तार पाप हय॥* [अर्थात् मैं जगाइ और मधाइसे भी अधिक पापी और मलके कीड़ेसे भी तुच्छ हुँ। जो मेरा नाम सुनता है, उसके पुण्य क्षय हो जाते हैं। जो मेरा नाम लेता है, उसे पाप लगता है।] (चै.च.आदि ५/२०५-२०६) अतः मैं तो दर्शनीय नहीं हूँ। दर्शनीय तो हरि-गुरु-वैष्णव हैं, श्रीमन्महाप्रभु हैं, इसलिए कृपा करके इन्हें महाप्रभुके दर्शन कराओ, ठाकुरके दर्शन कराओ।"

'संख्यापूर्वक नाम गान 'नतिभि'—पूज्यपाद महाराजजी जहाँ भी हरि-गुरु-वैष्णव, तुलसी इत्यादि देखते थे, तो साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते। हम लोग तो अधिकांशतः पञ्चाङ्ग प्रणाम कर देते हैं, किन्तु महाराजजी अपनेसे कनिष्ठ जनोंको भी दण्डवत् प्रणाम करनेमें संकोच नहीं करते थे।

वैष्णवों द्वारा व्यवहृत वस्तु भी हमारी सेव्य है

एक समय पूज्यपाद सागर महाराज पुरी मठमें थे। वहाँ वे अपनी भजन कुटीसे नीचे आकर ठाकुरको प्रणाम करने गए। जब प्रणाम करके उठे तो एक ब्रह्मचारीका वस्त्र सूखकर ऊपरसे नीचे गिरा हुआ था जिसपर महाराजजीका चरण पड़ गया। तब महाराजजीने उस वस्त्रको प्रणाम किया। यह देखकर सेवकने पूछा, "महाराजजी आप कपड़ेको क्यों प्रणाम कर रहे हैं? महाराजजी बोले, "देखो! जिस प्रकार वैष्णवजन हमारे सेव्य हैं, उसी प्रकार वैष्णवों द्वारा व्यवहार की जानेवाली प्रत्येक वस्तु, यथा—उनके वस्त्र, पादुका, थाली इत्यादि भी हमारी सेव्य हैं। वैष्णवोंके द्वारा व्यवहृत वस्तुओंको भी यत्नपूर्वक आदर देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति वैष्णव-सेवा तो कर रहा है, किन्तु वैष्णवोंके द्वारा व्यवहार की जानेवाली वस्तुओंकी उपेक्षा कर रहा है, तो वह ठीक-ठीक रूपमें वैष्णव-सेवा नहीं कर रहा है। इसलिए मैंने इस वस्त्रको प्रणाम किया। तब सेवकने पुनः पूछा-"महाराजजी जिसका वस्त्र है, वह तो आपसे छोटे हैं और आप उनसे बड़े हैं", तब पूज्यपाद महाराजजीने उत्तर दिया, "मुझे मेरे गुरुदेवने कहा था कि तुम नाम-सङ्कीर्तन करना और वैष्णव-सेवा करना। मेरे गुरुदेवने यह नहीं कहा था कि छोटे वैष्णवकी सेवा नहीं करना और बड़े वैष्णवकी करना; और फिर कौन छोटे और कौन बड़े हैं कैसे ज्ञात होगा? यदि कहो कि आयुसे पता चलेगा, तब तो चतुःसन आयुमें छोटे प्रतीत होते हैं, किन्तु बड़े-बड़े ब्रह्मर्षि उनको प्रणाम करते थे। जो विष्णुके सेवक होते हैं, वे ही वैष्णव हैं और वे हमारे सेव्य हैं।" महाराजजी कहने लगे-"छाड़िया वैष्णव सेवा, निस्तार पाइबा केबा" अर्थात् वैष्णव सेवा किए बिना इस जगत्से किसका उद्धार हुआ है। पूज्यपाद महाराज इस विषयमें विशेष सतर्क रहते थे।

कृष्ण हमारी अवश्य रक्षा करेंगे—ऐसा दृढ़ विश्वास

वर्ष २०१५ ई० में रथयात्राके समय पूज्यपाद सागर महाराजजी पुरीमें थे। उस समय उनको बुखार आ गया तो सेवक लोग उनको अस्पताल

ले गये। वहाँ जब डॉक्टरने महाराजजीको check किया तो उनको १०४ डिग्री बुखार था। डॉक्टरने कहा, "आप बाहर जाकर बैठिए, मैं पर्चा बनाकर दवा लिख देता हूँ।" महाराजजी डॉक्टरके कक्षसे बाहर आए तो डॉक्टर उनके सेवकसे कहने लगा, "साधु लोग तो भगवान्‌का भजन करते हैं। यदि इतना भजन करनेपर भी साधुओंको कष्ट आता है, तो फिर हम लोग क्यों भजन करें? तब तो भगवान्‌का भजन करना वृथा ही है। साधु लोग इतना कष्ट सहनकर भजन करते हैं, तब भी उन्हें कष्ट मिलता है, इससे तो हम लोग ही अच्छे हैं कि भजन नहीं करते पर कष्ट मिलता है और साधुको भजन करनेपर भी कष्ट मिलता है। तब फिर साधु और हममें भेद ही क्या रह गया, जब दोनोंको ही कष्ट मिलता है।" सेवकने डॉक्टरको कोई उत्तर नहीं दिया और वह prescription लेकर बाहर आ गया। जब सेवक डॉक्टरके कक्षसे बाहर आया और महाराजजीको चलनेके लिए कहा, तब पूज्यपाद महाराजजीको उनके गुरुदेवकी कृपासे अन्तर्यामी सूत्रसे अन्दर डॉक्टरने जो कहा उसका आभास हो गया और वे सेवकको बहुत दैन्यपूर्वक कहने लगे, "देखो! जो प्रारब्ध है वह तो सबको भोगना ही पड़ेगा। ब्रह्माजीने भी अपनी स्तुतिमें कहा है—"*तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्* (श्रीमद्भागवतम् १०/१४/८)", मैंने बहुत अपराध किए हैं, इसलिए तो यह सब हो रहा है और मैं तो अपने प्रारब्धका खण्डन कर नहीं पा रहा हूँ। जगत्‌में कौन ऐसा है जो अपने प्रारब्ध या कर्मफलका खण्डन कर सकता है?" कुछ समय मौन रहनेपर महाराजजीने पुनः कहा, "हाँ, एक व्यक्ति कर सकता है। कौन? जो गुरु-वैष्णवोंके चरणोंमें पूर्णरूपसे शरणागत हुआ है, उसको ही गुरुकी पूर्ण कृपा मिलती है और ऐसे व्यक्ति ही अपने प्रारब्धको पूर्णरूपसे खण्डन करनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु मेरेमें तो इतना सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि मैं तो अपने गुरुदेवके प्रति पूर्ण शरणागत हो नहीं पाया और उनकी ठीकसे सेवा कर नहीं पाया। इसलिए कौन मेरी रक्षा कर पाएगा?" ऐसा बोलकर पूज्यपाद महाराजजी, "हा गुरुदेव! हा प्रभुपाद! रक्षा कीजिए" कहते-कहते जोर-जोरसे क्रन्दन करने लगे। महाराजजीके रोनेकी आवाज़ सुनकर अन्दर बैठा डॉक्टर यह सोचकर तुरन्त बाहर आ गया कि पता नहीं अब क्या असुविधा हो गई महाराजजीको! तब उस डॉक्टरने महाराजजीको फिरसे अपने कक्षमें लेजाकर उनका check-up किया और वह आश्चर्यचकित हो गया। अब महाराजजीके शरीरमें कुछ भी ज्वर नहीं था और वे पूर्ण रूपमें स्वस्थ हो गए थे। तब डॉक्टरने पूछा, "यह कैसे हो गया?" तब महाराजजी थोड़ा मुस्कराकर कहने लगे, "*अवश्य रक्षिबेन कृष्ण विश्वास पालन*। अर्थात यह दृढ़ विश्वास रखना होगा कि कृष्ण और उनके निजजन हमारी अवश्य रक्षा करेंगे।" यह कहकर महाराजजी डॉक्टरके कक्षसे बाहर आ गये।

भिक्षा हेतु श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षासे अनुप्राणित

पुरी मठमें रहते समय पूज्यपाद महाराजजी एक व्यक्तिके घरमें प्रतिदिन भिक्षाके लिए जाते थे। वह व्यक्ति और उसकी पत्नी महाराजजीको देखते ही बहुत बुरा-भला कहने लगते, किन्तु महाराजजी अवश्य ही उनको एक बार महामन्त्र और एक चैतन्य भागवतका पयार सुनाते और उनके घरसे बेलीके फूल तोड़कर मठमें ठाकुरजीके लिए एक माला बनाते थे। ऐसा उन्होंने प्राय ४-५ महिने तक प्रतिदिन किया। प्रतिदिन उनकी गाली सुनकर आते थे और फूल तोड़कर आते थे। महाराजजी बोलते थे वे बुरा-भला कहते है तो कोई बात नहीं, मैं उनके घरमें जाता हूँ, महाप्रभुकी वाणीका कुछ कीर्तन करता हूँ, वे लोग अभी सुनें न सुनें, वाणी अपना प्रभाव एक दिन अवश्य दिखाएगी और उनके बगीचेका फूल तो ठाकुर सेवामें लग ही रहा है।" वास्तवमें बहुत दिन तक उनके घरके बागानसे फूल लाकर ठाकुरकी सेवा करनेके फलसे उन दोनोंके

हृदयमें थोड़ा परिवर्तन हुआ। एक दिन उस घरकी गृहणीने महाराजजीको बड़े दुखी होकर कहा–"बाबा! आप प्रतिदिन आते हैं और हम आपको बुरा-भला कहते हैं। आप हमें क्षमा कर देना।" तब उस गृहणीने महाराजजीको भिक्षा लाकर दी और कहा कि आप प्रति सप्ताह आकर भिक्षा ले जाना। इस प्रकार पूज्यपाद महाराजजी बहुत यत्न एवं सहनशीलतापूर्वक अनेक लोगोंको मठके साथ योगयुक्त करते थे।

एक बार पूज्यपाद महाराजजी भिक्षामें किसी एक घरमें गये। तो उस घरमें रहनेवाले व्यक्तिने महाराजजीको १५१ रुपये दिये। उस समयमें १५१ रुपये बहुत होते थे। महाराजजीने उसे वह १५१ रुपये लौटाते हुए कहा, "जब तक तुम मुझसे कुछ कृष्ण कथा न सुन लो मैं यह पैसा नहीं लूँगा।" उस व्यक्तिकी कथा सुननेकी कोई विशेष इच्छा नहीं थी, तथापि महाराजजीने उसे थोड़ी महाप्रभुकी कथा सुनाकर उससे "हरे कृष्ण" महामन्त्रका उच्चारण करवाया और तब ही उससे वह भिक्षा ग्रहणकर ठाकुरजीकी सेवामें लगाया। महाराजजी बिना कुछ भगवत् कथा सुनाये भिक्षा ग्रहण नहीं करते थे। इस प्रकार 'बल कृष्ण, भज कृष्ण, लह कृष्ण नाम'—श्रीमन्महाप्रभुने जिस प्रकार नित्यानन्द प्रभु और हरिदास ठाकुरको प्रचारमें भेजा था, महाराजजी भी उसी प्रकार महाप्रभुके आदर्शमें अनुप्राणित होकर प्रचार करते थे।

ग्रन्थ भगवान्‌की वाङ्मय मूर्ति

श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराज कहते थे कि ग्रन्थ भगवान्‌की वाङ्मय मूर्ति हैं। इसलिये वे जिस प्रकार जन्माष्टमी, रामनवमी, श्रीनृसिंह-चतुर्दशी इत्यादि तिथियोंपर उत्सव करते थे, उसी प्रकार जब भी वे कोई नया ग्रन्थ प्रकाशित करते थे, उस दिन भी वे उत्सव करते थे। कारण, उस दिन भी ग्रन्थ रूपमें भगवान्‌का वाङ्मय अवतार होता था। ग्रन्थोंके प्रति श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीका ऐसा अपूर्व आदर था। अपने गुरुदेवके इस आदर्शको शिरोधार्य करते हुए पूज्यपाद सागर महाराज अपने गुरुदेव द्वारा प्रकाशित प्रत्येक ग्रन्थ रूपी भगवान्‌के वाङ्मय अवतारको प्रतिदिन प्रणाम करते थे तथा कहीं कोई पृष्ठ फट जाए तो उसे स्वयं टेप लगाकर यत्नपूर्वक अलमारीमें रखते थे।

* * * * *

एक बार महाराजजी गर्मीके दिनोंमें बरामदेमें बैठकर हरिनाम कर रहे थे। तब सेवकने आकर उनसे कहा कि महाराजजी आप ऊपर चलकर पँखेमें बैठकर हरिनाम कीजिए। महाराजजीने कहा कि सुख-सुविधा, देहका आराम ढूँढ़नेसे क्या वास्तविक भजन होगा? हमारे गुरुवर्गोंने भजनका कैसा आदर्श दिखाया है—*"त्यक्त्वा तूर्णमशेष-मण्डलपति-श्रेणी सदा तुच्छवत्, भूत्वा दीनगणेशकौ करुणया कौपीन-कन्थाश्रितौ* (श्रीषड्गोस्वाम्यष्टकम् ४)"। आजकल हमें पँखा-कूलर भी मिल रहा है, खाने-पीनेकी भी सब सुविधाएँ हैं। सब सुख-सुविधाएँ रहनेपर भी क्या इससे हमारा यथार्थ भजन हो रहा है?

जब पूज्यपाद भक्तिवेदान्त श्रीधर महाराज (श्रीरसानन्द ब्रह्मचारी) श्रीसारस्वत गौड़ीय आसन और मिशनके पुरी मठमें नए आए थे, तब उनकी सेवासे सन्तुष्ट होकर पूज्यपाद सागर महाराजने ही अपने गुरुदेव श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती गोस्वामी महाराजजीको पत्र लिखकर उनको हरिनाम एवं दीक्षा देनेका निवेदन किया था।

पूज्यपाद भक्तिरञ्जन सागर महाराजका सम्पूर्ण जीवन ही दैन्यात्मक था। वे श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी *"तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना"*का पालन करते हुए निरन्तर हरि-गुरु-वैष्णव सेवामें रत रहे। उन्होंने अपने आचरणसे आगामी पीढ़ीके साधक-भक्तोंके लिए गुरु-वैष्णवोंके प्रति पूर्ण शरणागतिका आदर्श प्रस्तुत किया है। पूज्यपाद सागर महाराज हम सबपर अपनी शुभ कृपादृष्टि बनाए रखें। यही उनके श्रीचरणोंमें विनम्र प्रार्थना है।

—वैष्णव-गुणमुग्ध कुछेक जन

[आभार—श्रीश्यामानन्द दास ब्रह्मचारी]

श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी
द्वारा
भारतमें प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

१.	**श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, जवाहर हाट, मथुरा, उ. प्र.	☎ ९७१९०७०९३९
२.	**श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ**, दानगली, वृन्दावन, उ. प्र.	☎ ९२१९४७८००१
३.	**श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ**, कोलेरडाङ्गा लेन, नवद्वीप, नदीया, प. बं.	☎ ९३३३२२२७७५
४.	**श्रीदुर्वासा-ऋषि गौड़ीय आश्रम**, ईशापुर, मथुरा, उ. प्र.	☎ ९९१७६४३९७१
५.	**श्रीगोपीनाथ-भवन,** इमली-तला, परिक्रमा-मार्ग, वृन्दावन, उ. प्र.	☎ ९६३४५६३७३९
६.	**श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ**, दसविसा, राधाकुण्ड रोड़, गोवर्धन, उ. प्र.	☎ (०५६५)२८१५६६८
७.	**श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ**, बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली	☎ (०११)२५५३३२६८
८.	**श्रीवामन गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३९ रामानन्द चटर्जी स्ट्रीट, कोलकाता-९	☎ ९४३३२०३७१८
९.	**श्रीनारायण गोस्वामी गौड़ीय मठ**, ३१/२८ दीनबन्धु मित्रा सरणी, सुभाषपल्ली, सिलीगुड़ी (प.बं.)	☎ ८६२९९११४००
१०.	**जयश्रीदामोदर गौड़ीय मठ**, चक्रतीर्थ, पुरी, उड़ीसा	☎ ९७७६२३८३२८
११.	**श्रीराधागोविन्द गौड़ीय मठ**, डी-५, सेक्टर-५५, नोएडा (उ.प्र.)	☎ (०१२०)२५८२०१८
१२.	**श्रीरङ्गनाथ गौड़ीय मठ**, सर्वे-२६, हेसेरघट्टा, नृत्यग्राम कुटीरके पास, बङ्गलोर	☎ (०८०)२८४६६७६०
१३.	**श्रीश्रीगोविन्दजी गौड़ीय मठ**, मकान-२, गली-५, रूपनगर एन्क्लेव, जम्मू	☎ ९९०६९०४८०९
१४.	**श्रीराधामाधवजी गौड़ीय मठ**, माधवी कुञ्ज, भूपतवाला, हरिद्वार	☎ (०१३३४)२६०८४५
१५.	**आनन्द धाम गौड़ीय आश्रम**, परिक्रमा मार्ग, रमणरेती, वृन्दावन, उ. प्र.	☎ (०५६५)२५४०८४९
१६.	**श्रीराधामदनमोहन गौड़ीय मठ,** २४५/१, २९वाँ क्रास, खगदास पुर, मैंन रोड़, बङ्गलूरु-५६००९३	☎ ९९००१९२७३८
१७.	**श्रीश्रीराधामाधव गौड़ीय मठ**, १६२, सैक्टर-१६-ए, फरीदाबाद, हरियाणा	☎ ९९११२८३८६९

RNI NO. - UPHIN/2004/13352
POSTAL REGN NO. - MATHURA - 013/2025-2027
DATE OF PUBLICATION - 1 MARCH 2025

पारमार्थिक सचित्र हिन्दी पत्रिका श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाके सदस्य बनें

एक वर्षीय (1 yr) –	३०० रु॰
पञ्च वर्षीय (5 yr) –	१,२०० रु॰
आजीवन (Lifetime) –	७,५०० रु॰ [७५० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]
संरक्षक (Patron) –	१०,००० रु॰ [१००० रु॰ के भक्तिग्रन्थ उपहार]

सदस्यता भुगतानके लिए

(१) **Bank to bank NEFT transfer**

Account name:	SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA
Account no. :	037201000010611
IFSC code:	IOBA0000372
Bank:	Indian Overseas bank

(To help us update your subscription records after the bank deposit or transfer, immediately send an SMS to 9818779345 with your name, amount deposited and date of deposit.)

(२) **Demand draft or Cheque** (account payee) payable to: "SRI BHAGVAT PATRIKA SRI GOUDIYA" पत्रिका कार्यालयके पते पर Demand draft or Cheque भेजें।

सम्पर्क-सूत्र

श्रीश्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१ (उ.प्र.)

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकामें प्रकाशित प्रबन्ध-समूह एवं विषय-वस्तुसे सम्बन्धित जानकारीके लिए सम्पर्क करें –

e-mail: gokulchandradas@gmail.com
phone: 9897140412

श्रीश्रीभागवत-पत्रिकाकी सदस्यता-शुल्कके भुगतान एवं नवीन सदस्यता ग्रहण करनेके लिए सम्पर्क करें –

e-mail: bhagavata.patrika@gmail.com
phone: 9810654916; 8368371929